उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

हल्द्वानी

MAJY-604

तृतीय सेमेस्टर

संहिता स्कन्ध- 01

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

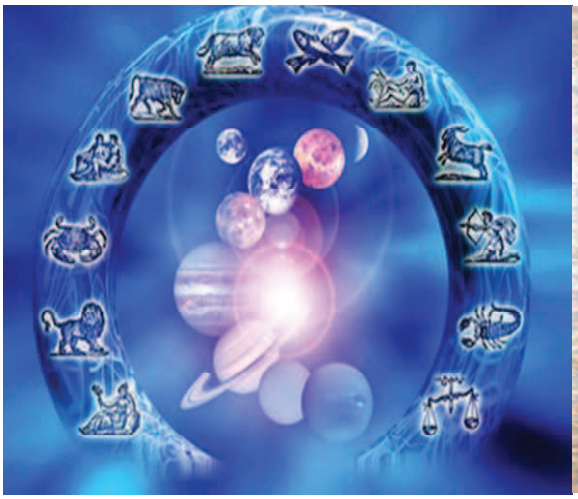

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139

फोन नं. – 05946-288052

टॉल फ्री न0 18001804025

Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

अध्ययन समिति – फरवरी 2020

अध्यक्ष

कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी

कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रोफेसर एच.पी. शुक्ल – (संयोजक)

निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय

अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी।

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी – (समन्वयक)

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर रामराज उपाध्याय

अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1**	**1, 2, 3, 4, 5**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**2**	**1, 2, 3, 4, 5**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष - 2021

प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: -

ISBN NO. -

नोट : - (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

एम.ए. (ज्योतिष)

(MAJY-20)

तृतीय सेमेस्टर

चतुर्थ पत्र

संहिता स्कन्ध- 01

MAJY-604

खण्ड - १

संहिता स्कन्ध

इकाई - १ संहिता ज्योतिष का परिचय

इकाई की संरचना

१.१. प्रस्तावना

१.२. उद्देश्य

१.३. संहिता ज्योतिष - सामान्य परिचय

१.४ संहिता ज्योतिष के प्रवर्त्तक व आचार्य

१.४.१ संहिता ज्योतिष के प्रमुख विषय

१.५. सारांश

१.६. पारिभाषिक शब्दावली

१.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

१.९. सहायक पाठ्य सामग्री

१.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

१.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम.ए. ज्योतिष तृतीय सेमेस्टर (MAJY-604) के चतुर्थ पत्र की प्रथम खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – संहिता ज्योतिष का परिचय। इससे पूर्व आप सभी ने ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख गणित एवं होरा या फलित स्कन्ध का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई से संहिता स्कन्ध का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

संहिता ज्योतिष किसे कहते है? उसके अन्तर्गत कौन-कौन से विषयों का समावेश है? उसका स्वरूप एवं महत्व क्या है ? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे।

अत: आइए हम सब संहिता ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

१.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि संहिता ज्योतिष किसे कहते हैं
- समझा सकेंगे कि संहिता ज्योतिष का इतिहास क्या है।
- संहिता ज्योतिष के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- संहिता ज्योतिष के महत्व को समझा सकेंगे।
- संहिता ज्योतिष में विशेष को प्रतिपादित कर सकेंगे।।

१.३. संहिता ज्योतिष : सामान्य परिचय

ज्योतिष शास्त्र के प्रधान तीन स्कन्ध है – सिद्धान्त, संहिता और होरा। इन प्रधान स्कन्धत्रय में से जिसमें सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र के विषयों का वर्णन हो, उसको **'संहिता'** कहते हैं। संहिता ज्योतिष में बिन्दु से सिन्धु तक, व्यक्ति से समष्टि तक, भूगर्भ से अन्तरिक्ष तक, ग्रह-नक्षत्र-तारादिपिण्डों से लेकर धूमकेतु, उल्कादि पिण्डों तक, वृष्टि- कृषि-पर्यावरणादि से लेकर समस्त सृष्टि पर्यन्त की यात्रा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संहिता ज्योतिष में विश्व के समस्त पदार्थ

समाहित हैं। अत्यन्त विस्तृत और विहंगम है संहिता ज्योतिष का क्षेत्र। सृष्टि के आरम्भ में जब जीव संसार के नये-नये अनुभवों को लेकर कार्य क्षेत्र में आता है तो कठिनाईयों का समाधान तथा अपनी जिज्ञासाओं की पूर्ति विभिन्न रीतियों से करता है। उन्हीं सम्बन्धों का अनुबन्ध स्वरूप प्रथम संहिता शास्त्र ज्योतिष का आविर्भाव हुआ। इसमें स्वप्न द्वारा शुभाशुभ फलों का ज्ञान, स्वर ज्ञान के द्वारा शुभाशुभ ज्ञान, अंगस्फुरण, पल्लीपतन, ग्रहचार, शुभ शकुन, उत्पातदर्शन, वृष्टि ज्ञान, सामुद्रिक विद्या आदि के द्वारा शुभाशुभ ज्ञानादि का विस्तृत विवेचन मिलता है।

संहिता ज्योतिष के बारे में बतलाते हुए आचार्य वराहमिहिर ने स्वग्रन्थ 'वृहत्संहिता' में भी कहा है –

ज्योति: शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं।
तत्कात्स्नर्योपनस्य नाम मुनिभि: संकीर्त्यते संहिता।।

यहाँ तत्कात्स्नर्योपनस्य का अर्थ बताते हुए आचार्य कहते हैं– ''तस्य ज्योति:शास्त्रस्य कात्स्न्र्येन निरवशेषेणोपनय: कथनं यस्मिन् शास्त्रे तच्छास्त्रं संहितेति मुनिभिर्गर्गादिभिर्नाम संकीर्त्यते कथ्यते।'' जैसा कि भगवान गर्ग का भी वचन है -

गणितं जातकं शाखां यो वेत्ति द्विजपुंगव:।
त्रिस्कन्धज्ञो विनिर्दिष्ट: संहितापारगश्च स:।।

अर्थात् जिस स्कन्ध के अन्तर्गत ज्योतिषशास्त्र के समस्त विषय समाहित हो, उसमें कुछ शेष न रह जाय, वह निरवशेष (शेष रहित) हो, उस स्कन्ध का नाम संहिता है। वस्तुत: संहिता स्कन्ध के विषय असीमित हैं। इन्हें विस्तारपूर्वक बताते हुए 'संहितापदार्था:' नाम से आचार्य ने उन विषयों का निर्देश किया है, जिनका विवेचन संहिता में किया गया है।

विदित है कि संहिता ज्योतिष का क्षेत्र भूगर्भ से अन्तरिक्ष तक है। इनके अन्दर होने वाले परिवर्तनों एवं उनके परिणामों का निरूपण संहिता स्कन्ध करता है। संहिता ग्रन्थों के एक-एक अध्याय आज के विज्ञान के एक-एक विधाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

संहिता शब्द की व्युत्पत्ति –

संहिता शब्द की व्युत्पत्ति सम उपसर्ग पूर्वक धा धारणे धातु से क्त प्रत्यय दधातेर्हि से धा को हि आदेश होकर संहित शब्द बनता है पुन: टाप् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है- सम्मिश्रण, संकलन अथवा संग्रह। विधि का संकलन ही मनुसंहिता, आचारसंहिता है। वेद का क्रमबद्ध पाठ वेदसंहिता तथा सन्धि के नियमों के अनुसार वर्णों का मेल व्याकरण की संहिता ''**पर:**

सन्निकर्ष: संहिता'' अष्टाध्यायी (१।४।१०९) है। जबकि ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जिसमें सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र के विषयों का वर्णन हो, उसे संहिता ज्योतिष कहा जाता है।

ज्योतिषशास्त्रस्य यस्मिन् स्कन्धे ग्रहचारवशात् ग्रहनक्षत्रादिबिम्बानां शुभाशुभलक्षणवशात् पशुपक्षिकीटादीनां चेष्टावशाच्च भूपृष्ठोपरि सामूहिकप्रभावस्य विवेचनं, प्राकृतिकाया आकाशीयाया: घटनायाश्च ज्ञानं क्रियते तत् संहिताशास्त्रम्।

अर्थात् ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध के अन्तर्गत ग्रहचारवशात् ग्रहनक्षत्रादि बिम्बों का शुभाशुभ लक्षण, पशु-पक्षी-कीटादियों के चेष्टावशात् भूपृष्ठ पर उनका सामूहिक विवेचन और इसके साथ-साथ प्राकृतिक, आकाशीय घटनाओं से जुड़े समस्त ज्ञान की प्राप्ति करते हैं, उसका नाम संहिता है।

संहिता स्कन्ध की प्रशंसा करते हुए वराहमिहिर स्वग्रन्थ वृहत्संहिता में कहते हैं –

संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति।

यत्रैते संहितापदार्था:।।

संहिता सम्बन्धी नि:शेष तत्वार्थ को जानने वाला दैवचिन्तक (पूर्वकृत कर्म को जानने वाला) होता है। जिसमें वक्ष्यमाण विषय का वर्णन होता है, उसका नाम संहिता है।

विस्तारपूर्वक वक्ष्यमाण पदार्थ के बारे में बतलाते हुए संहिता के बारे में कहते है –

दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागमचारादिभि: फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचार:। सप्तर्षिचार:। ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहश्रृंगाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणी स्वात्याषाढीयोगा: सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपवनोल्का दिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यायरागगन्धर्वनगररजोनिर्घातार्घकाण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्यांगविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्रश्वचक्रवातचक्रप्रासादक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनीराजनखंजकोत्पातशान्तिमयुरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टकृकवाकुकूर्गगोऽजाश्वे भपुरुषस्त्रीलक्षणान्यन्त: पुरचिन्तापिटक्लक्षणोपानच्छेद वस्त्रच्छेदचामरदण्डशयनाऽऽसनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानि शुभाऽशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगत: प्रतिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि। न चैकाकिना शक्यन्तेऽहर्निशमवधारयितुं निमित्तानि। तस्मात् सुभृतेनैव दैवज्ञेनान्येऽपि तद्विदश्चत्वार: कर्तव्या:। तत्रैकेनैन्द्री चाग्नेयी च दिगवलोकयितव्या। याम्या नैर्ऋती चान्येनैवं वारुणी वायव्या चोत्तरा चैशानी चेति। यस्मादुल्कापातादीनि शीघ्रमपगच्छन्तीति।

तस्याश्चाकारवर्णस्नेह प्रमाणादिग्रहर्क्षोपघातादिभि: फलानि भवन्ति।।

श्लोक का अर्थ है कि सूर्य आदि ग्रहों के संचार, उस संचार में होने वाला ग्रहों का स्वभाव, विकार, प्रमाण, वर्ण, किरण, द्युति, संस्थान उर्ध्वाधोगामी तोरण, दण्ड आदि का संस्थान, अस्त, उदय, मार्ग, मार्गान्तर, वक्र, अनुवक्र, नक्षत्रों के साथ ग्रह का समागम, चार नक्षत्र में चलन- इनके फल, नक्षत्र विभाग द्वारा बने हुए कूर्मचक्र से देशों का शुभाशुभ फल, अगस्त्यमुनि का संचार, सप्तर्षियों वशिष्ठ आदि सात ऋषियों के संचार, ग्रहों की भक्ति, देश, द्रव्य प्राणियों के आधिपत्य, नक्षत्रों के व्यूह द्रव्य जनों के आधिपत्य, ग्रह- श्रृंगाटक एकर्क्षस्थित तारा ग्रहों के श्रृंगाटक आदि स्थितिवश शुभाशुभ फल, ग्रहयुद्ध, ग्रहसमागम, ग्रह के वर्षपति होने पर उसका फल, गर्भलक्षण, रोहिणी योग, स्वाती योग, आषाढ़ी योग, सद्योवर्षण, कुसुमलता का लक्षण, वृक्षों के फल-फूल की उत्पत्ति के द्वारा सांसारिक शुभाशुभ का ज्ञान, परिधि (प्रतिसूर्य का लक्षण), परिवेष, परिघ (सूर्य के उदयास्त काल में तिर्यक् स्थित मेघ रेखा का लक्षण), वायु, उल्कापात, दिग्दाह का लक्षण, भूकम्प, सन्ध्या की लालिमा, गन्धर्व-नगर का लक्षण, धूलि का लक्षण, निर्घात- लक्षण, अर्घकाण्ड, अन्न की उत्पत्ति, इन्द्रध्वज और इन्द्रधनुष का लक्षण, वास्तुविद्या, अंगविद्या, वायसविद्या, अन्तरचक्र, मृगचक्र, अश्वचक्र, वातचक्र, प्रासादलक्षण, प्रतिमालक्षण, प्रतिमा-प्रतिष्ठा, वृक्षायुर्वेद, दकार्गल (भूमिगत जल की उपलब्धि), नीराजन, खंजन-लक्षण, उत्पातों की शान्ति, मयूरचित्रक, घृत, कम्बल, खड्ग, पट्ट, मुर्गा, कूर्म, गौ, अजा, कुत्ता, अश्व, हरित, पुरूष, स्त्री, अन्त:पुर की चिन्ता, पिटक, मोती, वस्त्रच्छेद, चामर, दण्ड, शय्या, आसन – इनका लक्षण, रत्नपरीक्षा, दीप-लक्षण, दन्त-काष्ठ आदि के द्वारा शुभाशुभ फल का लक्षण, संसार के प्रत्येक पुरूष और राजाओं में पूर्वोक्त लक्षण का विचार एकाग्रचित्त होकर दैवज्ञ को करना चाहिये।

प्रश्न मार्ग ग्रन्थ के अनुसार संहिता ज्योतिष –

जनुपुष्टिक्षयवृष्टिद्विरदतुरंगादिसकलवस्तूनाम्।
केतूल्कादीनां वा लक्षणमुदितं हि संहिते स्कन्धे।।

अर्थात् जनकल्याण, जनहानि, वृष्टिविज्ञान, हाथी, अश्वादि समस्त पालतू पशुओं के शुभाशुभ लक्षण, धूमकेतु, उल्कापिण्डादि के उदय का पृथ्वी पर प्रभाव – ये सभी विषय संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत आते हैं।

जब किसी व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में जन्म काल के समय से कुण्डली बनाकर त्रिकाल (भूत, भविष्य एवं वर्तमान) समय का विचार किया जाय, तो उसे जातक या फलित ज्योतिष कहा जाता है तथा वही विचार जब समाज, राष्ट्र या विश्व के लिए हो तो उसका विचार जिस विधा के द्वारा किया

जाता है, उसे संहिता ज्योतिष कहते है।

१.४ संहिता ज्योतिष के प्रवर्त्तक व आचार्य –

बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर पूर्ववर्ती आचार्यों के रूप में गर्ग, पराशर, असित, देवल, वृद्धगर्ग, कश्यप, भृगु, वसिष्ठ, बृहस्पति, मनु, मय, सारस्वत, ऋषिपुत्र आदि को संहिता ग्रन्थों के रचनाकर्त्ताओं के रूप में स्मरण करते हैं। आचार्य भट्टोत्पल ने वराहमिहिर विरचित सभी ग्रन्थों की टीकाऐं लिखी बृहत्संहिता ग्रन्थ की टीका लेखन के समय भट्टोत्पल ने वराहमिहिर से भी कहीं अधिक पूर्ववर्ती आचार्यों का स्मरण किया है। उन्होंने टीका ग्रन्थ में व्यास, भानुभट्ट, विष्णुगुप्त, विष्णुचन्द्र, यवन, रोम, सिद्धासन, भद्रबाहु, नन्दि, नग्नजित्, शक्र, कपिल, चाणिक्य, बलदेव, बृहद्रथ, गरुत्मान, कपिस्थल, ऋषभ, भदित्त, सवित्र, लाटदेव, हस्ताब्द, असित, अगस्त्य, द्रव्यवर्धन, विष्णुचन्द्र, इन्द्र, काश्यप, गार्ग, जीवशर्मा, गरुड, दैवल, देवस्वामी, नन्दी, नग्नजीत, नारद, पुलिशाचार्य, बादरायण, भट्टब्रह्मगुप्त, भानुभट्ट, भागुरि, भारद्वाज मुनि, मय, मयासुर, मणित्थ, माण्डव्य, यवन, यवनेश्वर, वज्रऋषि, वक्ष्यमाण, वररुचि, विष्णुगुप्त, विष्णु, विश्वकर्मा, वीरभद्र, शुक्र, समुद्र ऋषि, सत्याचार्य, सारस्वत, सिद्धसेन, सूर्य, श्रुतकीर्ति, हिरण्यगर्भ इत्यादि आचार्यों का स्मरण किया। इन आचार्यों के द्वारा रचित ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं होते हैं, केवल इनके नाम ही शेष रह गये हैं।

सम्प्रति संहिता ग्रन्थों में वृहत्संहिता, बार्हस्पतय संहिता, गर्ग संहिता, गुरु संहिता, नारद संहिता, महासंहिता, वाराह संहिता, रावण संहिता, पाराशर संहिता, भृगु संहिता, काश्यप संहिता, लोमश संहिता, गौतम संहिता और वसिष्ठ संहिता आदि के नाम सामने आते हैं, किन्तु इनमें सर्वसुलभ तथा लोक प्रचलित वृहत्संहिता और नारदसंहिता हैं। कुछ विद्वानों का यह अनुमान है कि वेदाङ्ग काल तक संहिताशास्त्र का पृथक् अस्तित्व नहीं था। संहिता ज्योतिष के तत्त्व विविध पुराणों में और इतिहास ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं।

१.४.१ संहिता ज्योतिष के प्रमुख विषय -

अद्भुतसागरग्रन्थ में भी बृहत्संहिता के समान ही विषयों का वर्णन है, परन्तु उसमें अनेक नवीन विषयों का भी विवेचन किया गया जिनकी चर्चा बृत्संहिता में भी चर्चा नहीं है। उसमें दिव्याश्रय, अन्तरिक्षाश्रय और भौमाश्रय संज्ञक तीन भागों में विविध उत्पातों का सोपपत्तिक वर्णन किया है व उनकी शान्ति के उपाय भी वर्णित किये है। भौमाश्रय में भूकम्प, जलाशय अग्नि, दीप, देव प्रतिमा, शक्रध्वज, वृक्ष, गृह, वातज उपस्कर, वस्त्र, उपाहन, आसन, शस्त्र, दिव्य स्त्रीपुरुषदर्शन, मानुष, पिटक, स्वप्न, कायरिष्ट, दन्त जन्म, प्रसव, सर्वशाकुन, नाना मृग, विहग, गज, अश्व, वृष,

महिष, बिडाल, शकुन, शृगाल, गृहगोधिका, पिपीलिका, पतङ्ग, मशक, मक्षिक, लूता, भ्रमर, भेक, खन्जरीट दर्शन, पोतकी, कृष्णपेचिका, वायसाद्भुतावर्त्त, मिश्रकाद्भुतावर्त्त, अद्भुतशान्त्यद्भुतावर्त्त, सद्योवर्षनिमित्ताद्भुतावर्त्त, अविरुद्धाद्भुतावर्त्त और पाकसमयाद्भुतावर्त का निरूपण किया हैं जिनमें से अनेक विषयों की चर्चा बृत्संहिता में नहीं प्राप्त होती।

संहिता के विषय अत्यन्त विस्तीर्ण हैं। इसमें सम्पूर्ण देश की स्थिति, देश का शुभाशुभ फल, कृषि सम्बन्धित फल, वृष्टि सम्बन्धित फल, वाणिज्य सम्बन्धित फल, राजनीति सम्बन्धित फल और अर्थ सम्बन्धित फल का विस्तृत रुप प्रतिपादन किया गया है। इसके निर्धारण हेतु आचार्य वराहमिहिर रचित बृहत्संहिता में वर्णन है कि सर्वप्रथम सत्ताईस नक्षत्रों को नव खण्डों में विभाजित किया गया। प्रत्येक खण्ड में तीन तीन नक्षत्र स्थापित किये। बृहद भारत देश के भूभाग को नक्षत्रों के आधार पर विभाजित किया। जब ग्रहों का सञ्चार उन नक्षत्रों पर होता हैं तब उनसे संबंधित देशों पर उन ग्रहों का शुभाशुभ का प्रतिपादन किया गया। किस स्थान पर कब कितनी मात्रा में वृष्टि होगी? व्यापार जगत में किन वस्तुओं के मूल्यों में तेजी या मन्दी होगी? इत्यादि विषयों का विचार भी संहिता ग्रन्थों में उक्त ग्रहचार के आधार पर किया गया।

१.४.२ संहिता ज्योतिष का महत्व

आचार्य वराहमिहिर द्वारा विरचित बृहत्संहिता एक अद्वितीय एवं विलक्षण संहिता ग्रन्थ है। उसमें दैवज्ञ प्रशंसा के सन्दर्भ में निर्देश किया है कि जो दैवज्ञ संहिता शास्त्र को सम्यक् रुप से जानता है, वहीं दैवचिन्तक होता है – "**संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति**"। जो दैवज्ञ गणित व होरा शास्त्र के साथ संहिता शास्त्र में भी पारंगत होता है उसकी "**सांवत्सर**" संज्ञा दी गई। सांवत्सर का अत्यधिक महत्त्व प्रतिपादित किया गया। सांवत्सर किसी देश, प्रदेश, जिले या नगर का शुभाशुभ फलकथन करने में समर्थ होता है, अतएव कहा गया कि अपने कल्याण की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को साम्वत्सर रहित देश में निवास नहीं करना चाहिये। जैसा कि आचार्य का कथन है –

नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।

चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते।। (बृहत्संहिता, अध्यायः-२, श्लोक-११)

सांवत्सर का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए आचार्य वराहमिहिर ने वर्णन किया – जैसे दीप्तिरहित रात्रि अन्धकार युक्त होता है, जैसे सूर्यरहित आकाश अन्धकारयुक्त होता है उसी प्रकार दैवज्ञ विहीन राजा अन्धकार में ही भ्रमण करता है –

अप्रदीपा यथा रात्रिः अनादित्यं यथा नभः।

तथा असांवत्सरो राजा भ्रम्यत्यन्ध इवाध्वनि।।(बृहत्संहिता, अध्यायः-२, श्लोक-८)

जो राजा विजय की कामना करता है उसे सिद्धान्त संहिता होरा रूप त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र में पारंगत सांवत्सर की अभ्यर्चना कर अपने राज्य में स्थान देना चाहिये –

यः तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः।

अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा।। (बृहत्संहिता, अध्यायः-२, श्लोक-१९)

सांवत्सर का अत्यधिक महत्त्व आचार्य वराहमिहिर ने प्रतिपादित किया। यदि कोई दैवज्ञ भविष्य में घटित होने वाली आपदा का पूर्वानुमान कर लेता है तो वह एक बृहत्तम कार्य करता है जोकि न एक हजार हाथी मिलकर कर सकते है न ही चार हजार घोडे मिलकर कर सकते हैं। जैसा कि कहा गया –

न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणम्।

करोति देशकालज्ञो यथैको दैवचिन्तकः।। (बृहत्संहिता, सांवत्सरसूत्राध्यायः, श्लोक-३८)

इस प्रकार त्रिस्कन्ध के वेत्ता दैवज्ञ की प्रशंसा करते हुए आचार्य वराहमिहिर ने संहिता स्कन्ध के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया। होरा शास्त्र का ज्ञाता ज्योतिषी तो केवल एक व्यक्ति विशेष का ही फल प्रतिपादन कर सकता है परन्तु संहिता स्कन्ध में कुशल दैवज्ञ तो सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिये चिन्तन करता है। अतः संहिता स्कन्ध को जानने वाला ज्योतिषी को ही दैवज्ञ की संज्ञा दी गई है, सभी को नहीं। आज भी संहिता ज्योतिष का अत्यन्त महत्त्व समाज में दिखाई देता है।

बोध प्रश्न

1. वृहत्संहिता निम्न में से किसकी रचना है?
   क. पृथुयश ख.वराहमिहिर ग.वशिष्ठ घ.नारद
2. संहित शब्द में कौन सा प्रत्यय लगकर संहिता शब्द बनता है?
   क. टाप् ख. डाप ग. क्त घ. मतुप
3. ज्योतिष शास्त्र के प्रधानतया कितने स्कन्ध है?
   क. २ ख. ३ ग.४ घ. ५
4. निम्न में भूगर्भ से लेकर अन्तरिक्ष तक किसका क्षेत्र है?
   क. सिद्धान्त ख. संहिता ग. होरा घ. प्रश्न
5. बल्लालसेन द्वारा लिखित संहिता ग्रन्थ का क्या नाम है?
   क. अद्भुतसागर ख. वशिष्ठ संहिता ग. भृगु संहिता घ. वृहत्संहिता

१.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्र के प्रधान तीन स्कन्ध है – सिद्धान्त, संहिता और होरा। इन प्रधान स्कन्धत्रय में से जिसमें सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र के विषयों का वर्णन हो, उसको **'संहिता'** कहते हैं। संहिता ज्योतिष में बिन्दु से सिन्धु तक, व्यक्ति से समष्टि तक, भूगर्भ से आकाश तक, ग्रह-नक्षत्र- तारादिपिण्डों से लेकर धूमकेतुओं तक, वृष्टि- कृषि-पर्यावरण से लेकर समस्त सृष्टि की यात्रा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संहिता ज्योतिष में विश्व के समस्त पदार्थ समाहित हैं। अत्यन्त विस्तृत और विहंगम है संहिता ज्योतिष का क्षेत्र। जिस स्कन्ध के अन्तर्गत ज्योतिषशास्त्र के समस्त विषय समाहित हो, उसमें कुछ शेष न रह जाय, वह निरवशेष हो, उस स्कन्ध का नाम संहिता है। वस्तुत: संहिता स्कन्ध के विषय असीमित हैं। इन्हें विस्तारपूर्वक बताते हुए 'संहितापदार्था:' नाम से आचार्य ने उन विषयों का निर्देश किया है, जिनका विवेचन संहिता में किया गया है। संहिता ज्योतिष का क्षेत्र भूगर्भ से अन्तरिक्ष तक है। इनके अन्दर होने वाले परिवर्तनों एवं उनके परिणामों का निरूपण संहिता स्कन्ध करता है। संहिता के एक-एक अध्याय आज के विज्ञान के एक-एक विधाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। संहिता शब्द की व्युत्पत्ति सम उपसर्ग पूर्वक धा धारणे धातु से क्त प्रत्यय दधातेर्हि से धा को हि आदेश होकर संहित शब्द बनता है पुन: टाप् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है- सम्मिश्रण, संकलन अथवा संग्रह। विधि का संकलन ही मनुसंहिता, आचारसंहिता है।

१.६ पारिभाषिक शब्दावली

स्कन्धत्रय – तीन स्कन्ध – सिद्धान्त, संहिता एवं होरा।

भूगर्भ - पृथ्वी के अन्दर

संहिता – जो निरवशेष हो। सम्मिश्रण, संकलन एवं संग्रह।

सिन्धु – सागर

मनुसंहिता – मनु द्वारा रचित संहिता

बल्लालसेन – अद्भुत सागर ग्रन्थ के रचयिता

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्।

१.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क

3. ख
4. ख
5. क

१.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीका – पं. अच्युतानन्द झा
2. वशिष्ठ संहिता – मूल प्रणेता- महात्मा वशिष्ठ, टीका- डॉ. गिरिजाशंकर शास्त्री
3. नारदसंहिता – मूल रचयिता - नारद, टीका- पं. रामजन्म मिश्र।
4. अद्भुतसागर – मूल लेखक - बल्लालसेन, टीका – प्रोफेसर शिवाकान्त झा

१.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. भृगु संहिता
2. नारद संहिता
3. रावण संहिता
4. प्रश्न मार्ग

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. संहिता ज्योतिष से आप क्या समझते है।
2. संहिता स्कन्ध में प्रतिपादित मुख्य विषयों का वर्णन कीजिये।
3. संहिता ज्योतिष का महत्व अपने शब्दों में लिखिये।
4. संहिता ज्योतिष के प्रवर्त्तक व आचार्यों का वर्णन कीजिये।
5. संहिता ज्योतिष पर निबन्ध लिखिये।

इकाई - २ दैवज्ञ लक्षण विवेचन

इकाई की संरचना

२.१. प्रस्तावना

२.२. उद्देश्य

२.३. दैवज्ञ लक्षण परिचय

२.३.१. दैवज्ञ की परिभाषा

२.४. वृहत्संहिता के अनुसार दैवज्ञ लक्षण कथन

२.४.१ दैवज्ञ कैसा नहीं होना चाहिए

२.४.२ त्रिस्कन्धवाक् (दैवज्ञ) की प्रशंसा

२.५. सारांश

२.६. पारिभाषिक शब्दावली

२.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

२.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

२.९. सहायक पाठ्य सामग्री

२.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

२.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-604 के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – दैवज्ञ लक्षण विवेचन। इससे पूर्व आप सभी ने ज्योतिष शास्त्र के संहिता स्कन्ध का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में दैवज्ञ लक्षण का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

दैवज्ञ किसे कहते है? दैवज्ञों के लक्षण कौन-कौन से है? उसका स्वरूप एवं महत्व क्या है ? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे।

आइए दैवज्ञों एवं उनके लक्षण से जुड़े विभिन्न विषयों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

२.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि दैवज्ञ किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि दैवज्ञ लक्षण क्या है।
- दैवज्ञ के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- दैवज्ञ के महत्व को जान लेंगे।
- दैवज्ञ की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

२.३. दैवज्ञ लक्षण परिचय

आचार्य वराहमिहिर ने 'दैवज्ञ लक्षण' ज्ञानार्थ स्वरचित ग्रन्थ वृहत्संहिता में सांवत्सरसूत्राध्याय नाम का एक स्वतन्त्र अध्याय का ही लेखन किया है, जो अपने आप में विशिष्ट बात है। अत: यहाँ सांवत्सरसूत्र का अर्थ है – संवत्सर को जानने वाला दैवज्ञ (ज्योतिषी) का लक्षण। संवत्सरं वेत्ति सांवत्सर:। सूत्र्यते अर्थो ये तत्सूत्रं सांवत्सरसूत्रमित्यर्थ:। जो संवत्सर तथा उसके फलाफल के बारे में जानने वाला हो, उसे सांवत्सर कहते हैं। इसीलिए आचार्य ने दैवज्ञ लक्षण कथन के लिए अध्याय का नामकरण किया- सांवत्सरसूत्राध्याय:।

२.३.१ दैवज्ञ की परिभाषा

आप सभी को ज्ञात होना चाहिए कि दैवज्ञ शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है- जो दैव अर्थात देवताओं के बारे में जानने वाला हो। आचार्य ने ज्योतिषी को दैवज्ञ कहकर सम्बोधित किया है, क्योंकि ज्योतिषी भी दैव को जानने वाला होता है। दैव का एक अर्थ विधि अर्थात् ब्रह्मा भी होता है।

२.४ वृहत्संहिता के अनुसार दैवज्ञ लक्षण

वृहत्संहिता में वराहमिहिर दैवज्ञ (ज्योतिषी) का लक्षण बतलाते हुए कहते हैं –

तत्र सांवत्सरोऽभिजात: प्रियदर्शनो विनीतवेष: सत्यवागनसूयक: सम: सुसंहितोपचितगात्रसन्धिरविकलश्चारूकरचरणनखनयनचिबुकदशन-श्रवणलालभ्रूत्तमांगो वपुष्मान् गम्भीरोदात्तघोष:। प्राय: शरीरकारानुवर्तिनो हि गुणा दोषाश्च भवन्ति।

ज्योतिषी कैसा होना चाहिए? इस श्लोक के अर्थ में वह कहते है –

ज्योतिषी को कुलीन, देखने में प्रिय, विनम्र, सत्यवादी, दूसरे के गुणों में दोष नहीं निकालने वाला, राग-द्वेष से रहित, दृढ़ और पुष्ट शारीरिक सन्धि वाला, सर्वांगपूर्ण, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हाथ, पैर, नाखून, आँख, ठोढ़ी, दाँत, कान, मस्तक और शिर वाला, सुन्दर तथा बोलने में गम्भीर और उदात्त प्रकृति वाला होना चाहिये। विदित हो कि शरीर की आकृति के अनुरूप ही दोष-गुण होते हैं। अत: दैवज्ञ को उक्तकथनानुसार होना चाहिये।

शुचिर्दक्ष: प्रगल्भो वाग्मी प्रतिभानवान् देशकालवित् सात्विको न पर्षद्भीरू: सहाध्यायिभिरनभिभवनीय: कुशलोऽव्यसनी शान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नानविद्याभिज्ञो विबुधार्चनव्रतोपवासनिरत: स्वतन्त्राश्चर्योत्पादितप्रभाव: पृष्टाभिधाय्यन्यत्र दैवात्ययाद् ग्रहगणितसंहिता होराग्रन्थार्थवेत्तेति।।

दैवज्ञ के अन्य गुणों को बतलाते हुए आचार्य कहते है कि – दैवज्ञ को पवित्र, चतुर, सभा में बोलने वाला, वाचाल, प्रतिभाशाली, देश-काल को जानने वाला, व्यसनों से रहित, शान्तिक (उत्पातों के निवारणार्थ वेदोक्त मन्त्र पाठ विनियोग का अनुष्ठान), पौष्टिक (आयु, धन आदि को बढ़ाने वाली विद्या), अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण, स्तम्भन, चालन आदि विद्या) इनको जानने वाला, देवपूजन, व्रत, उपवासों में निरत, अपने शास्त्र द्वारा आश्चर्यजनक विषय लाकर प्रभाव को बढ़ाने वाला, प्रश्नोत्तर करने वाला, दैवात्यय (प्राकृतिक अशुभ उत्पात) के निवारणार्थ बिना पूछे भी शान्तिकर्म बताने वाला और ग्रहों के गणित, संहिता, होरादि के ग्रन्थों का ज्ञाता – इन समस्त गुणों से युक्त होना चाहिए।

तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु पंचस्वेतेषु सिद्धान्तेषु युग वर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्त्तनाडीप्रमाणत्रुटित्रुटयाद्यवयवादिकस्य कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता।।

दैवज्ञों में अब तक कहे गये गुणों के अतिरिक्त और अन्य गुणों का भी उल्लेख करते हुए आचार्य

कथन है कि दैवज्ञ को ग्रहगणित के प्रसंग में पौलिश, रोमक, वाशिष्ठ, सौर, पैतामह- इन पाँच सिद्धान्तों में प्रतिपादित युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त्त, घटी, पल, प्राण, त्रुटि, त्रुटि के अवयव आदि कालों का तथा भगण, राशि, अंश, कला, विकला आदि क्षेत्रों का ज्ञाता होना चाहिए।

दैवज्ञ के गुणों के क्रम में विस्तृत वर्णन करते हुए आचार्य कहते है कि -

चतुर्णां च मानानां सौरसाविननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः।

युगों का प्रमाण, सौरवर्ष प्रमाण, अयनज्ञान प्रमाण, सौर, सावन, नाक्षत्र, चान्द्र मासों को, अधिकमास, क्षयमास इनके उत्पत्ति कारणों को जानने वाला ज्योतिषी होना चाहिए।

षष्टयब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्रतिपत्तिच्छेदवित्।

प्रभव आदि ६० संवत्सर, तदन्तर्गत युग, वर्ष, मास, दिन, होरा इनके अधिपतियों की प्रतिपत्ति और छेद निवृत्ति का ज्ञान भी दैवज्ञ को होना चाहिये।

सौरादीनां च मानानामसदृशसदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादनपटुः।

दैवज्ञ को अनेक शास्त्रों में कहे गये सौर आदि मानों में यथार्थ और अयथार्थ का विचार करने में सकुशल होना चाहिये अर्थात् इन शास्त्रोक्त भिन्न-भिन्न मानों में कौन ठीक है? कौन नहीं? इसका विचार करने में योग्य होना चाहिये।

सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षं सममण्डललेखासम्प्रयोगाभ्युदितां शकानां छायाजलयन्त्रदृग्गणितसाम्येन प्रतिपादनकुशलः।।

सिद्धान्तों में सौर आदि मानों के भेद, अयननिवृत्ति के भेद, सममण्डल प्रवेशकालिक उदित अंशों के भेद, छाया जलयन्त्र से दृग्गणितैक्य को जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।

सूर्यादीनां च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्योत्तरनीचोच्चगतिकारणाभिज्ञः।।

सूर्य आदि ग्रहों के शीघ्र, मन्द, दक्षिण, उत्तर, नीच और उच्च गतियों के कारणों को जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।

सूर्याचन्द्रमसोश्च ग्रहणे ग्रहणादिमोक्षकालदिक्प्रमाण स्थितिविमर्दवर्णा देशानामनागतग्रहसमागमयुद्धानामादेष्टा।।

सूर्य-चन्द्र के ग्रहण में स्पर्श, मोक्ष, इनके दिग्ज्ञान, स्थिति, विभेद, वर्ण, देश, भावी ग्रहसमागम और ग्रहयुद्धों को बताने वाला दैवज्ञ को होना चाहिये।

प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनकक्ष्याप्रमाणप्रतिविषययोजनपरिच्छेदकुशलः।।

प्रत्येक ग्रहों के योजनात्मक कक्षाप्रमाण और प्रत्येक देशों का योजनात्मक देशान्तर जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।

भूभगणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावलम्बकाहर्व्यासचरदलकालराश्युदयच्छायानाडीकरण प्रभृतिषु क्षेत्रकालकरणेष्वभिज्ञः।।

पृथ्वी, नक्षत्रों के भ्रमण तथा संस्थान, अक्षांश, लम्बांश, द्युज्याचापांश, चापखण्ड, राश्युदय, छाया, नाडी, करण आदि के क्षेत्र, काल और करण को जानने वाला दैवज्ञ को होना चाहिये।

नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारो निकषसन्तापाभिनिवेशैः

कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्य वक्ता तन्त्रज्ञो भवति।

कसौटी, आग और शाण से परीक्षित शुद्ध सुवर्ण की तरह अतिशय स्वच्छ शास्त्र का वक्ता, अनेक प्रकार चोद्य प्रश्नभेदों को जानने से निश्चयात्मक ज्ञान वाला दैवज्ञ होना चाहिये।

२.४.१ दैवज्ञ कैसा नहीं होना चाहिए -

न प्रतिबद्धं गमयति वक्ति न च प्रश्नमेकमपि पृष्टः।

निगदति न च शिष्येभ्यः स कथं शास्त्रार्थविज्ञेयः।।

जो शास्त्रयुक्त अर्थ को नहीं कहता, प्रश्न पूछने पर एक का भी उत्तर नहीं देता और छात्रों को नहीं पढ़ाता, वह किस तरह शास्त्रज्ञ हो सकता है? अर्थात् कदापि नहीं। इसलिए दैवज्ञ को ऐसा नहीं होना चाहिए।

ग्रन्थोऽन्यथाऽन्यथार्थं करणं यश्चान्यथा करोत्यबुधः।

स पितामहमुपगम्य स्तौति नरो वैशिकेनार्याम्।।

जिस तरह ग्रन्थ का आशय है, उसको नहीं समझकर जो मूर्ख उसका विरूद्ध अर्थ करता है, वह मानो ब्रह्मा जी के पास में जाकर वेश्या की तरह उनकी स्तुति करता है। अतः दैवज्ञ को इस प्रकार का नहीं होना चाहिए।

२.४.२ त्रिस्कन्धवाक् (दैवज्ञ) की प्रशंसा

तन्त्रे सुपरिज्ञाते लग्ने छायाम्बुयन्त्रसंविदिते।

होरार्थे च सुरूढे नादेष्टुर्भारती वन्ध्या।।

जो मनुष्य शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो, छाया, जलयन्त्र आदि साधनों के द्वारा लग्न का ज्ञान कर सकता हो और फलित शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो, ऐसे गुणसम्पन्न बताने वाले

की वाणी कभी भी वन्ध्या अर्थात् निष्फल नहीं होती।

अप्यर्णवस्य पुरुष: प्रतरन् कदाचि
दासादयेदरिनलवेगवशेन पारम्।
न त्वस्य कालपुरूषाख्यमहार्णवस्य
गच्छेत्क्दाचिदनृषिर्मनसापि पारम्।।

तैरता हुआ मनुष्य कदाचित् वायु के वेग से समुद्र को पार कर सकता है, पर कालपुरूष संज्ञक ज्योतिषशास्त्र रूप महासमुद्र को ऋषि-मुनियों के अतिरिक्त सामान्य मनुष्य मन से भी पार नहीं कर सकता।

कृत्स्नांगोपांगकुशलं होरागणितनैष्ठिकम्।
यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति।।

सब प्रकार से कुशल, होराशास्त्र और गणित में प्रवीण ज्योतिषी की पूजा जो राजा नहीं करता, वह नाश को प्राप्त होता है।

वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहा:।
अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम्।।

वन में रहने वाले, ममत्वरहित और किसी से कुछ लेने की इच्छा न रखने वाले भी ग्रह, नक्षत्र आदि को जानने वाले दैवज्ञों से पूछते हैं।

अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभ:।
तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि।।

दीपहीन रात्रि और सूर्यहीन आकाश की तरह ज्योतिषी से हीन राजा शोभित नहीं होता हुआ अन्धे की तरह मार्ग में घूमता रहता है।

मुहूर्त्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा।
सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात् सांवत्सरो यदि।।

यदि ज्योतिषी न हो तो मुहूर्त्त, तिथि, नक्षत्र, ऋतु, अयन आदि समस्त विषयों को कौन बताएगा? उलट पलट हो जायें।

तस्माद्राज्ञाधिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणी:।
जयं यश: श्रियं भोगान् श्रेयश्च समभीप्सता।।

अत: जय, यश, श्री, भोग और मंगल की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिये कि विद्वान्, श्रेष्ठ ज्योतिषि के पास जाकर अपना भविष्य पूछना चाहिए।

नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।

चक्षुर्भूतो हि यत्रैव पापं तत्र न विद्यते।।

सब प्रकार से अपने कुशल की इच्छा रखने वाले मनुष्य को दैवज्ञहीन देश में निवास नहीं करना चाहिये, क्योंकि जहाँ पर नेत्रस्वरूप दैवज्ञ निवास करते हैं, वहाँ पाप का निवास नहीं होता।

न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते।

ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तकः।।

ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन-अध्यापन करने वाला मनुष्य नरक में नहीं जाता एवं ज्योतिष शास्त्र का चिन्तन करने वाला पुरूष ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत्कृत्स्नं जानाति यो द्विजः।

अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पंक्तिपावनः।।

जो द्विज ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी सम्पूर्ण शब्दार्थ को जानता है, वह श्राद्ध में सर्वप्रथम भोजन कराने के लायक, पंक्ति को पवित्र करने वाला तथा आदरणीय होता है।

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।

ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः।।

जिन म्लेच्छों यवनों के पास यह शास्त्र रहता है, वे भी जब ऋषि की तरह पूजित होते है, तब दैवज्ञ ब्राह्मण की क्या बात? अर्थात् उनकी पूजा तो निश्चित ही होती है।

कुहकावेशपिहितैः कर्णोपश्रुतिहेतुभिः।

कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो न स दैववित्।।

इन्द्रजाल विद्या से अपने शरीर को छिपाकर गुप्त रूप से प्रश्नकर्ता का अभिप्राय समझकर बताने वाले और कर्मपिशाची सिद्धि से प्रश्न आदि बताने वाले ज्योतिषी को सब जगह नहीं पूछना चाहिये, क्योंकि वह दैवज्ञ नहीं होता है।

अविदित्वैव यच्छास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते।

स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः।।

जो मनुष्य ज्योतिष शास्त्र को बिना जाने अपने-आपको दैवज्ञ कहकर व्रत, उपवास आदि बताता है, उस पंक्तिदूषक पापी को नक्षत्रसूचक जानना चाहिये।

नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः।

स व्रजन्त्यन्धतामिस्रं सार्धमृक्षविडम्बिा।।

नक्षत्रसूचक द्वारा बताये गये व्रत, उपवास आदि को जो मनुष्य करता है, वह उस ऋक्षविडम्बी नक्षत्रसूचक के साथ अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है।

नगरद्वारलोष्टस्य यद्वत्स्यादुपयाचितम्।
आदेशस्तद्वदज्ञानां यः सत्यः स विभाव्यते।।

जिस तरह पुरद्वार में स्थित मृत्खण्ड के समीप की हुई याचना कभी-कभी पूरी हो जाती है, उसी तरह मूर्खों का आदेश भी कभी-कभी सत्य हो जाता है, परमार्थतः कभी भी सत्य नहीं होता।

सम्पत्या योजितादेशस्तद्विच्छिन्नकथाप्रियः।
मत्तः शास्त्रैकदेशेन त्याज्यस्तादृंगमहीक्षिता।।

सम्पत्ति पाने के लोभ से जो आदेश करता है और ज्योतिष शास्त्र से भिन्न कथा से जिसका स्नेह है ऐसे शास्त्र के एक देश को जानने से मत्त ज्योतिषी का राजा द्वारा त्याग कर देना चाहिये।

यस्तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः।
अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा।।

जय की इच्छा रखने वाले राजा को होरा, गणित, संहिता इन तीनों स्कन्धों को अच्छी तरह जानने वाले दैवज्ञों की पूजा करनी चाहिये और उनकी आज्ञा माननी चाहिये।

न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणम्।
करोति देशकालज्ञो यथैको दैवचिन्तकः।।

देश काल को जानने वाला एक दैवज्ञ जो काम करता है, वह हजार हाथी और चार हजार घोड़े भी नहीं कर सकते।

दुःस्वप्नदुर्विचिन्तितदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि।
क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं शशिनः श्रुत्वा भसंवादम्।।

चन्द्र के नक्षत्र संवाद सुनने से बुरे स्वप्न, बुरे चिन्तन, बुरे दर्शन, बुरे कर्म इन सभी का शीघ्र नाश होता है।

न तथेच्छति भूपतेः पिता जननी वा स्वजनोऽथवा सुहृत्।
स्वयशोऽभिविवृद्धये यथा हितमाप्तः सबलस्य दैववित्।।

अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिए दैवज्ञ जिस तरह राजा का हित करता है, उस तरह उसके माता-पिता, स्वजन और मित्र भी नहीं करते।

प्रश्न मार्ग ग्रन्थानुसार दैवज्ञ लक्षण –

ज्योतिषशास्त्रविदग्धो गणितपटुवृत्तवांश्च सत्यवचाः।

विनयी वेदाध्यायी ग्रहयजनपटुश्च भवतु दैवज्ञः।।
दैवविदेवम्भूतो यद्वदति फलं शुभाशुभं प्रष्टुः।
तत्सर्वं न च मिथ्या भवति प्राज्ञैस्तया चोक्तम्।।
दशभेदं ग्रहगणितं जातकमवलोक्य निरवशेषं यः।
कथयति शुभमशुभं वा तस्य न मिथ्या भवेद्वाणी।।
अनेकहोरातत्वज्ञः पंच सिद्धान्तकोविदः।
उहापोहपटुः सिद्धमन्त्रो जानाति जातकम्।।

दैवज्ञ को ज्योतिषशास्त्र में पारंगत होना चाहिए। वह सच्चरित्र तथा गणितशास्त्र में कुशल हो, सत्य बोलने वाला हो। वह विनयशील, नित्य वेदों का स्वाध्याय करने वाला ग्रहयज्ञ शान्तिकर्म एवं अनुष्ठानादि करने में निपुण होना चाहिये।

इस प्रकार की अर्हता को प्राप्त दैवज्ञ प्राश्निक के प्रश्न का जो कुछ भी शुभाशुभ उत्तर कहता है वह सब प्राचीन ऋषियों के मतानुसार कभी असत्य नहीं होता है।

दैवज्ञ को दस प्रकार के ग्रहगणित को सीखना बहुत आवश्यक है। उसे सम्पूर्ण जातकशास्त्र का सविस्तार अध्ययन करना चाहिए, फिर उसके द्वारा जो भी शुभाशुभ फल कहा जायेगा वह सदा सत्य होगा।

बोध प्रश्न -

1. वृहत्संहिता किसकी रचना है।
   क. वराहमिहिर ख. वेंकटेश ग.वशिष्ठ घ.लोमश
2. वराहमिहिर ने स्वग्रन्थ में दैवज्ञ लक्षण का वर्णन किस अध्याय में किया है?
   क. दकार्गल ख. ग्रहचाराध्याय ग. सांवत्सरसूत्राध्याय घ. वृक्षायुध्याय
3. निम्न में संवत्सरं वेत्ति ..... होगा?
   क. सांवत्सर: ख. प्रभव ग. विजय: घ. कोई नहीं
4. ज्योतिषी को कैसा होना चाहिये?
   क. प्रिय ख. कुलीन ग. पवित्र घ. उपयुक्त सभी
5. संवत्सरों की संख्या कितनी है?
   क. ५० ख. ६० ग. ७० घ. ८०
6. नारद द्वारा रचित ग्रन्थ का क्या नाम है?

क. प्रश्नमार्ग ख. वशिष्ठ संहिता ग. वृहत्संहिता घ. नारद संहिता

२.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि आचार्य वराहमिहिर ने 'दैवज्ञ लक्षण' ज्ञानार्थ स्वरचित ग्रन्थ वृहत्संहिता में सांवत्सरसूत्राध्याय नाम का एक स्वतन्त्र अध्याय का ही लेखन किया है, जो अपने आप में विशिष्ट बात है। अत: यहाँ सांवत्सरसूत्र का अर्थ है – संवत्सर को जानने वाला दैवज्ञ (ज्योतिषी) का लक्षण। संवत्सरं वेत्ति सांवत्सर:। सूत्र्यते अर्थो ये तत्सूत्रं सांवत्सरसूत्रमित्यर्थ:। जो संवत्सर तथा उसके फलाफल के बारे में जानने वाला हो, उसे सांवत्सर कहते हैं। इसीलिए आचार्य ने दैवज्ञ लक्षण कथन के लिए अध्याय का नामकरण किया- सांवत्सरसूत्राध्याय:।

आप सभी को ज्ञात होना चाहिए कि 'दैवज्ञ' शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है- जो दैव अर्थात देवताओं के बारे में जानने वाला हो। आचार्य ने ज्योतिषी को दैवज्ञ कहकर सम्बोधित किया है, क्योंकि ज्योतिषी भी दैव को जानने वाला होता है। दैव का एक अर्थ विधि अर्थात् ब्रह्मा भी होता है।

२.६ पारिभाषिक शब्दावली

दैवज्ञ – ज्योतिषी

लक्षण - स्वरूपादि का विवेचन

विधि – ब्रह्मा

दैव – देवता या ब्रह्मा

वृहत्संहिता – आचार्य वराहमिहिर द्वारा लिखित ग्रन्थ

नारद संहिता – महर्षि नारद द्वारा विरचित

संहिता – सम्मिश्रण

२.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. ग
3. क

4. घ
5. ख
6. घ

२.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीका – पं. अच्युतानन्द झा
2. नारद संहिता – टीकाकार – पं. रामजन्म मिश्र
3. प्रश्न मार्ग – टीकाकार - आचार्य गुरु प्रसाद गौड़
4. वशिष्ठ संहिता – मूल लेखक – महात्मा वशिष्ठ, टीका – प्रोफेसर गिरिजाशंकर शास्त्री

२.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. भृगु संहिता – महात्मा भृगु।
2. रावण संहिता – (मूल ग्रन्थ - अप्राप्य)
3. प्रश्न मार्ग –
4. वशिष्ठ संहिता –

२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. दैवज्ञ किसे कहते है? समझाते हुए लिखिये।
2. वराहमिहिर द्वारा प्रणीत दैवज्ञ लक्षण का वर्णन कीजिये।
3. वृहत्संहिता में दैवज्ञों के बारे में क्या कहा गया है। लिखिये
4. दैवज्ञ का महत्व प्रतिपादित कीजिये।

इकाई – 3 ग्रहचार विवेचन

इकाई की संरचना

३.१. प्रस्तावना

३.२. उद्देश्य

३.३. ग्रहचार - सामान्य परिचय

३.४. नारदसंहिता के अनुसार ग्रहचार विवेचन

३.५. सारांश

३.६. पारिभाषिक शब्दावली

३.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

३.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

३.९. सहायक पाठ्य सामग्री

३.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

३.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-604 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – ग्रहचार विवेचन। इससे पूर्व आप सभी ने संहिता ज्योतिष का परिचय एवं दैवज्ञों के लक्षण से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है अब आप सूर्यादि ग्रहों का चार अर्थात् ग्रहचार का अध्ययन करेंगे।

ग्रहचार से तात्पर्य ग्रहों के चलन से है। चर शब्द का अर्थ चलने से सम्बन्धित है। इस इकाई में आप सूर्यादि समस्त ग्रहों का चार एवं उसके फल का अध्ययन करने जा रहे हैं।

अत: आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े सूर्यादि समस्त ग्रहों के चार एवं उसके शुभाशुभ फल का अध्ययन हम इस इकाई में करते है।

३.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि ग्रहचार किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि ग्रहों का चार कैसे होता है।
- सूर्य एवं चन्द्रमा ग्रह के चार फल को जान सकेंगे।
- मंगल, बुध एवं गुरु ग्रह के चारफल को बता सकेंगे।
- शुक्र एवं शनि ग्रह के चारफल का विश्लेषण करने में समर्थ हो जायेंगे।

३.३. ग्रहचार : सामान्य परिचय

ज्योतिष शास्त्र में ग्रहचार का अर्थ है – ग्रहों का चलन। 'चर' शब्द चलन अर्थ में प्रयुक्त होता है। सूर्यादि ग्रहों का चार एवं चारफल का वर्णन समस्त संहिताचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित किया है। आइए सर्वप्रथम सूर्य के चार से आरम्भ करते है -

आदित्य (सूर्य) चार –

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमायनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु।।

श्लोकार्थ है कि - यह निश्चित है कि किसी समय आश्लेषा के आधे भाग से रवि का दक्षिणायन और धनिष्ठा के आदि भाग से उत्तरायण की प्रवृत्ति थी, नहीं तो पूर्वशास्त्र में इसकी चर्चा नहीं होती।

आज का मत –

साम्प्रतमयनं सवितु: कर्कटकाद्यं मृगादिश्चान्यत्।
उक्ताभावो विकृति: प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्ति:।।

इस समय कर्कादि से सूर्य के दक्षिणायन की और मकरादि से उत्तरायण की प्रवृत्ति होती है। इस तरह कथित अर्थ के अभाव का नाम विकार है। ये सब प्रत्यक्ष देखने से स्पष्ट होते है।

३.४ नारदसंहिता के अनुसार ग्रह चार विवेचन–

सूर्य चार -

दंडाकारेकबंधे वा ध्वांक्षाकारेऽथ कीलके।
दृष्टेऽर्कमण्डले व्याधिर्भीतिश्चौरार्थनाशनम्।।

सूर्य मण्डल में दण्ड की आकृति, कबन्ध (बिना सिर का शरीर), ध्वांक्ष (काक) की आकृति अथवा कील दृष्टिगोचर होने पर व्याधि, भय एवं चोर भय तथा धन का नाश होता है।

सितरक्तै: पीतकृष्णैस्तैर्मिश्रैर्विप्रपूर्वकान्।
हन्ति द्वित्रिचतुर्भिर्वा राज्ञोऽन्यत्र जनक्षय:।
उर्ध्वैर्भानुकरैस्ताम्रैर्नाशं याति च भूपति:।।

श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण एवं मिश्रित रंग यदि सूर्य का दृष्टिगोचर हो तो क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्त्यजों को कष्ट होता है। दो तीन या चार वर्ण यदि एक साथ दिखलाई दे तो राजा का अन्यथा प्रजा का नाश होता है। यदि सूर्य की उर्ध्वगामी किरणें ताम्र वर्ण की दिखाई दें तो राजा का नाश होता है।

पीतैर्नृपसुत: श्वेतै: पुरोधाश्चित्रितैर्जना:।
धूम्रैर्नृप: पिशंगैश्च जलदोधो मुखैस्तथा।।

यदि सूर्य की उर्ध्वगामी किरणें पीतवर्ण की हों तो राजपुत्र श्वेत होने पर पुरोहित, चित्रित होने पर जनता, धूम्रवर्ण होने पर राजा तथा पिंगल होने पर मेघों की क्षति होती है।

उदयास्तमये काले स्वास्थ्यं तै: पाण्डुसन्निभै:।
भास्करस्ताम्र संकाश: शिशिरे कपिलोऽपि वा।।
कुंकुमाभौ वसन्तर्त्तौ कपिलो वापि शस्यते।।

उदय और अस्तकाल में सूर्य किरणें यदि पाण्डुरंग की हों तो वे स्वास्थ्य का नाशक होती है। शिशिर में ताम्रवर्ण या कपिलवर्ण, वसन्त में कुंकुमवर्ण या कपिल वर्ण शुभ होता है।

पीताभकृष्णवर्णोऽपि लोहितस्तु यथाक्रमात्।
इन्द्रचापार्द्धमूर्तिश्चेत् भानुर्भूपविरोधकृत्।।

यदि आकाश मण्डल में सूर्य की आकृति अर्द्ध धनुषाकार तथा उसका रंग पीला, काला और लाल हो तो राजाओं में विरोध उत्पन्न करने वाला होता है।

मयूरपत्रसंकाशो द्वादशाब्दं न वर्षति।
शशरक्तनिभे भानौ संग्रामो ह्यचिराद् भवेत्।।

यदि सूर्य का बिम्ब मोर के पंख के समान दिखाई दे तो १२ वर्ष तक वृष्टि नहीं होती।तथा यदि सूर्य बिम्ब शशक खरगोश के रक्त के सदृश हो तो शीघ्र ही युद्ध होता है।

चन्द्रस्य सदृशो यत्र चान्यं राजानमादिशेत्।
अर्के श्यामे कीटभयं भस्माभे शस्त्रतो भयम्।।

चन्द्रमा के समान रविबिम्ब के दिखलाई देने पर राज परिवर्तन होता है। तथा श्याम वर्ण सूर्य के दृष्टिगोचर होने पर कीट भय एवं भस्म के सदृश वर्ण का यदि सूर्य दृष्टिगोचर हो तो शस्त्रभय होता है।

छिद्रेऽर्कमण्डले दृष्टे तदा राजविनाशकृत्।
घटाकृतिः क्षुद्भयकृत् पुरहा तोरणाकृतिः।।
छत्राकृतिर्देशहन्ता खण्डभानुर्नृपान्तकृत्।
उदयास्तमये भानोर्विद्युदुल्काशनिर्यदि।।
तदा नृपवधो ज्ञेयस्त्वथवा राजविग्रहः।।

सूर्यमण्डल में छिद्र दृष्टिगोचर हो तो राजा का नाश, घड़े की आकृति के समान होने से क्षुधा का भय, तोरण की आकृति होने से पुर का नाश होता है। छाते की आकृति से देश का नाश तथा खण्डित सूर्यबिम्ब दर्शन से राजा का नाश होता है। सूर्य के उदय और अस्त के समय यदि बिजली चमके, उल्कापात दिखलाई पड़े या विजली गिरे तो राजा का वध होता है अथवा राजविग्रह होता है।

पक्षं पक्षार्द्धमर्केन्दू परिविष्टावहर्निशम्।
राजानमन्यं कुरुतो लोहितावुदयास्तगौ।।
उदयास्तमये भानुराछिन्नः शस्त्रसन्निभैः
घनैर्युद्धं खरोष्ट्राद्यैः पापरूपैर्भयप्रदः।।

यदि सूर्य और चन्द्रमा एक पक्ष या आधे पक्ष तक निरन्तर परिवेश में रहें, अथवा उदयास्त के समय

रक्तवर्ण के हों तो राजा का परिवर्तन होता है। सूर्य उदय और अस्त काल में शस्त्र के सदृश आकार वाले बादलों से कटा दृष्टिगोचर हो अथवा आकाश में सूर्य, गदहा और ऊँट जैसा पाप स्वरूप मेघों से आच्छादित दृष्टिगोचर हो तो भयानक युद्ध होता है।

चन्द्रमा का चार –

याम्यश्रृंगोन्नतश्चन्द्रोऽशुभदो मीनमेषयो:।
सौम्यश्रृंगोन्नत: श्रेष्ठोनृयुग्मकरयोस्तथा।।

मीन और मेषराशिगत चन्द्रमा का याम्यश्रृंग उन्नत होना अशुभ फलदायक तथा मिथुन और मकर राशिगत चन्द्रमा का सौम्य श्रृंग श्रेष्ठफलसूचक होता है।

समोऽक्षघटयो: कर्कसिंहयो: शरसन्निभ:।
चापकीटभयो: स्थूल: शूलवत्तौलिकन्ययो:।।
विपरीतोदितश्चन्द्रोदुर्भिक्षकलहप्रद:।
यथोक्तोभ्युदितश्चेन्दु: प्रतिमासं सुभिक्षकृत्।।

वृष और कुम्भ के चन्द्रमा के दोनों कोने समान, कर्क और सिंह राशियों में वाण की आकृति का, वृश्चिक और धनु राशियों में स्थूल, तुला और कन्या राशियों में शूल के सदृश होता है। यथोक्त प्रकार से उदित चन्दमा सुभिक्षकारक तथा इससे विपरीत उदय होने पर चन्द्रमा दुर्भा और कलह प्रद होता है।

आषाढद्वयमूलेन्द्रधिष्णयानां याम्यग: शशि:।
अग्निप्रदस्तोयचरवनसर्पविनाशकृत्।।

आषाढाद्वय, मूल, ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में यदि चन्द्रमा का याम्यश्रृंग उन्नत हो तो अग्निप्रद तथा जलचर, वन एवं सर्पों का विनाश करने वाला होता है।

विशाखामैत्रयोर्याम्यपार्श्वग: पापकृत्सदा।
मध्यग: पितृदैवत्ये द्विदैवत्ये शुभोत्तरे।।

सदैव विशाखा और अनुराधा नक्षत्रों में याम्यश्रृंग उन्नत होने पर पापकारक होता है। तथा मघा में मध्यम और विशाखा में उत्तर श्रृंग शुभ होता है।

सम्प्राप्य पौष्णभात् रौद्रात्षट् ऋक्षाणि शशी शुभ:।
मध्यगो द्वादशर्क्षाणि अतीत्य नव वासवात्।।

रेवती से ६ नक्षत्र को प्राप्त कर चन्द्रमा शुभ होता है। तथा आर्द्रा से १२ नक्षत्रों में मध्यम और ज्येष्ठा से ९ नक्षत्रों को पारकर चन्द्रमा पुन: शुभफलदायक होता है।

यमेन्द्राहिभतोयेशा मरूतश्चार्द्धतारका:।
ध्रुवादिति द्विदैवा स्युध्यर्द्धाश्च परा: समा:।।

भरणी, ज्येष्ठा, आश्लेषा, पू0षा0 तथा स्वाती ये अर्द्ध तारक या अर्द्धसंज्ञक नक्षत्र हैं तथा ध्रुव अर्थात् तीनों उत्तरा, रोहिणी, पुनर्वसु, विशाखा इन नक्षत्रों की संज्ञा भी अर्धतारक है। शेष नक्षत्र सम होते हैं।

याम्यश्रृंगोन्त: श्रेष्ठ: सौम्यश्रृंगोन्नत: शुभ:।
शुक्ले पिपीलिकाकारे हानिर्वृद्धिर्यथाक्रमात्।।

चन्द्रमा का दक्षिणश्रृंग उन्नत होना अशुभ और उत्तरश्रृंग उन्नत होना शुभ होता है। चन्द्रमा की आकृति में यदि चींटी का सा चिह्न दृष्टिगोचर हो तो क्रमश: कृष्णपक्ष में हानि और शुक्लपक्ष में वृद्धि होती है।

सुभिक्षकृद्विशालेन्दुरविशालोर्घनाशन:।
अधोमुखे शस्त्रभयं कलहो दण्डसंनिभे:।।

यदि चन्द्रमा का विशाल स्वरूप दृष्टिगोचर हो तो सुभिक्ष होता है तथा छोटा रूप दृष्टिगोचर हो तो दुर्भिक्ष होता है। चन्द्रमा के अधोमुख दृष्टिगोचर होने पर शस्त्रभय तथा दण्डाकार दृष्टिगोचर होने पर कलह उत्पन्न होता है।

कुजाद्यैर्निहते श्रृंगे मण्डले वा यथाक्रमात्।
क्षेमार्धवृष्टिनृपतिजनानां नाशकृच्छशी।।

यदि चन्द्रश्रृंग या चन्द्रमण्डल मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि से आहत हो तो क्रमश: क्षेम, अर्घ, वृष्टि, नृप वर्ग का तथा जन नाश करने वाला होता है।

भौमचार –

सप्ताष्टनवमर्क्षेषु स्वोदयाद्विक्रिते कुजे।
तद्वक्रमुष्णं तस्मिन्स्यात् प्रजापीडाग्निसंभव:।।

अपने उदय नक्षत्र से सातवें, आठवें तथा नवें नक्षत्र में यदि मंगल वक्री हो तो उसे उष्णसंज्ञक कहते हैं। इसमें अग्नि भय होता है तथा प्रजा पीड़ित होती है।

दशमैकादशे ऋक्षे द्वादशे वा प्रतीपगे।
वक्रमल्पसुखं तस्मिन् तस्य वृष्टिविनाशनम्।।

यदि दशम, एकादश या द्वादश नक्षत्र में मंगल वक्री हो तो इसमें अल्प सुख हो तथा अवर्षण होता है।

कुजे त्रयोदशे ऋक्षे वक्रिते वा चतुर्दशे।

व्यालाख्यवक्रं तत्तस्मिन् सस्यवृद्धिरहेर्भयम्।।

यदि उदय नक्षत्र से तेरहवें या चौदहवें नक्षत्र में मंगल वक्री हो तो इसे व्याल नामक वक्र कहते हैं। इसमें धान्य की वृद्धि होती है तथा सर्पभय होता है।

पंचदशे षोडशर्क्षे तद्वक्रं रूधिराननं।

सुभिक्षकृत्भयं रोगान्करोति यदि भूमिज:।।

यदि १५ वें या १६ वें नक्षत्र पर मंगल ग्रह वक्री हो तो इसे रूधिरानन वक्र कहते हैं। इसमें सुभिक्ष होता है तथा भय एवं रोग होता है।

अष्टादशे सप्तदशे तदासिमुसलं स्मृतम्।

दस्युभिर्धनहान्यादि तस्मिन्भौमे प्रतीपगे।।

१८ वें १७ वें नक्षत्र में मंगल वक्री हो तो इसे असिमुसल नामक वक्र कहते हैं। इसमें चोरों से तथा डाकुओं से धन की हानि होती है।

फाल्गुन्योरूदितो भौमो वैश्वदेवे प्रतीपग:।

अस्तगश्चतुरास्यर्क्षे लोकत्रयविनाशकृत्।।

यदि मंगल पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उदय होकर उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में वक्री हो और पुन: रोहिणी में अस्त हो जाय तो तीनों लोकों का नाश करने वाला होता है।

उदित: श्रवणे पुष्ये वक्रतो नृपहानिद:।

यद्दिग्भ्योऽभ्युदितो भौमस्तद्दिग्भूपभयप्रद:।।

यदि मंगल श्रवण नक्षत्र में उदित हो और पुण्यनक्षत्र में वक्री हो तो राजाओं को हानिप्रद होता है। तथा जिस दिशा में उदय होता है उस देश के राजा के लिए भय उत्पन्न करता है।

मखा मध्यगतो भौमस्तत्रैवं च प्रतीपग:।

अवृष्टिशस्त्रभयद: पाण्डुदेशाधिपातकृत्।।

यदि मंगल मघा नक्षत्र के मध्य में उदय होकर मघा नक्षत्र में ही वक्री हो जाय तो अवृष्टि हो, शस्त्रभय हो तथा पाण्डु देश के राजा का मरण होता है।

पितृद्विदैवधातृणां भिद्यन्ते योगतारका:।

दुर्भिक्षं मरणं रोगं करोति यदि भूमिज:।।

यदि मंगल मघा, विशाखा और रोहिणी से योगतारा विद्ध हो तो दुर्भिक्ष, मरण तथा रोग होता है।

त्रिषूत्तरासु रोहिण्यां नैऋते श्रवणेन्दुभे।

अष्टष्टिदश्चरन् भौमो रोहिणी दक्षिणे स्थितः।।

तीनों उत्तरा, रोहिणी, मूल, श्रवण, मृगशीर्ष में चलते हुए यदि मंगल रोहिणी के दक्षिण भाग में हो तो अनावृष्टि
होती है।

भूमिजः सर्वधिष्ण्यानामुदग्गामी शुभप्रदः।
याम्यगोनिष्टफलदो भेदे भेदकरो नृणाम्।।

मंगल यदि किसी भी नक्षत्र के उत्तर भाग से गमन करे तो शुभदायक होता है। दक्षिण भाग से गमन करे तो अनष्टिकारक होता है। तथा भेद होने पर राजाओं में भेद उत्पन्न करता है।

बुधचार –

विनोत्पातेन शशिजः कदाचिन्नोदयं व्रजेत्।
अनावृष्टयग्निभयकृदनर्थं नृपविग्रहम्।।

बिना उपद्रव के बुध कभी उदय नहीं होता। इसके उदय होने पर अनावृष्टि, अग्निभय, अनर्थ तथा राजाओं में विग्रह होता है।

वसु श्रवण विश्वेंदु धातृभेषु चरन् बुधः।
भिनत्ति यदि तत्तारामवृष्टि व्याधिभीतिकृत्।।

वसु धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराषाढ़ा, मृगशिर्ष, रोहिणी इन नक्षत्रों में गमन करता हुआ यदि इन्हें वेध भी करे तो अनावृष्टि, व्याधि और भयकारक होता है।

आर्द्रादि पितृभ्रान्तेषु दृश्यते यदि चन्द्रजः।
तदा दुर्भिक्षकलहो रोगाणां वृद्धिभीतिकृत्।।

आर्द्रा से लेकर मघा पर्यन्त ६ नक्षत्रों में यदि बुध दिखाई दे तो वह दुर्भिक्ष कलह तथा रोग की वृद्धि करने वाला एवं भयदायक होता है।

हस्तादि रसतारासु विचरन् इन्दुनन्दनः।
क्षेमं सुर्भिक्षमारोग्यं कुरुते पशुनाशनम्।।

हस्त से ज्येष्ठा तक ६ नक्षत्रों में भ्रमण करते हुए बुध, क्षेम सुभिक्ष, आरोग्य प्रदान करता है, किन्तु पशुओं का नाश करता है।

अहिर्बुघ्नयार्यमाग्नेययमभेषु चरन् यदि।
धातुक्षयं च जन्तुनां करोति शशिनन्दनः।।

अहिर्बुध्न्य उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, कृत्तिका, भरणी नक्षत्र में यदि बुध गमन करें तो जन्तुओं का धातु क्षय करता है। अर्थात् दुर्भिक्ष होता है।

पूर्वात्रये चरन् सौम्यो योगतारां भिन्नति चेत्।
क्षुच्छस्त्रामय चौरेभ्यो भयदः प्राणिनस्तदा।।

बुध, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदादि नक्षत्रों में भ्रमण करते हुए यदि इनका भेद करे तो भूख-शस्त्र रोग और चोरों से प्राणी वर्ग को भय देता है।

याम्याग्निधातृवायव्यधिष्णयेषु प्राकृता गतिः।
ईशेंदुसापिर्पत्र्येषु ज्ञेया मिश्राह्वया गतिः।।

बुध की भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, स्वाती नक्षत्रों में प्राकृता गति तथा आर्द्रा, मृगशिरा, आश्लेषा और मघा नक्षत्रों में मिश्रा गति होती है।

संक्षिप्तादितिभाग्यार्यमेज्यधिष्णेषु या गतिः।
गतिस्तीक्ष्णाजचरणेऽहिर्बुध्न्येन्द्राश्विभेषु च।।

पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी, उ0फा0, पुष्य इन नक्षत्रों में संक्षिप्ता तथा पू0भा0, उ0भा0 ज्येष्ठा और अश्विनी में बुध की गति को तीक्ष्णा गति कहते हैं।

मिश्रसंक्षिप्तयोर्मध्ये फलदो ऽन्यास्वर्निष्टदः।
वैशाखे श्रावणे पौषे – आषाढेप्युदितो बुधः।।
जनानां पाफलदस्त्वितरेसु शुभप्रदः।
इषोर्जमासयोः शस्त्रदुर्भिक्षाग्निभयप्रदाः।।
उदितश्चन्द्रजः श्रेष्ठो रजतस्फटिकोपमः।।

मिश्र और संक्षिप्त गतियों में बुध शुभफलदायक होता है तथा अन्य गतियों में अनिष्टकारके होता है। वैशाख, श्रावण, पौष, आषाढ में यदि बुध उदित हो तो प्रजावर्ग के लिए अशुभ होता है। आश्विन और कार्तिक मासों में शस्त्रभय, अग्निभय तथा दुर्भिक्ष होता है और शेष मासों में शुभ होता है। यदि बुध चाँदी और स्फटिक मणि के समान स्वच्छ उदित हो तो शुभफलदायक होता है।

गुरु चार -

द्विभा उर्जादिमासाः स्युः पंचात्यैकादशस्त्रिभाः।
यद्भिष्ण्याभ्युदितो जीवस्तन्नक्षत्राह्ववत्सरः।।

कार्तिक आदि महीने दो-दो नक्षत्रों के होते हैं किन्तु पाँचवाँ फाल्गुन अन्त्य आश्विन और एकादश भाद्रपद मास तीन-तीन नक्षत्रों का होता है तथा गुरु जिस नक्षत्र में उदय होता है उसी नक्षत्र के नाम से उस सम्वत्सर का नाम होता है। जैसे कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र में गुरु के होने पर कार्तिक मास तथा उस सम्बत्सर का नाम कार्तिक होगा।

पीडास्यात्कार्तिकेवर्षे रथगोऽग्न्युपजीविनाम्।
क्षुच्छस्राग्निभयंवृद्धि: पुष्पकौसुम्भजीविनाम्।।

कार्तिक नामक वर्ष कृत्तिका, रोहिणी में रथ, अग्नि तथा गायों से आजीविका चलाने वाले को पीड़ा होती है। भूख, शस्त्र और अग्नि का भय जनवर्ग को होता है तथा लाल और पीले रंग के फूलों की वृद्धि होती है। अथवा पुष्पों से आजीविका चलाने वाले सुखी रहते है।

अनावृष्टि: सौम्यवर्षे मृगाखुशलभाण्डजै:।
सर्वसस्यवधो व्याधिर्वैरं राज्ञां परस्परम्।।

सौम्य नामक वर्ष में वर्षा नहीं होती। मृग, चूहे, टीड्डी तथा अण्डज पक्षी आदि जीवों से फसल की हानि, रोग और वैर से जनकष्ट तथा राजाओं में पारस्परिक मनोमालिन्य रहता है।

निवृत्तवैरा: क्षितिपा: जगदानन्दकारका:।
पुष्टिकर्मरता: सर्वे पौषेऽब्देध्वरतत्परा:।।

पौष नामक वर्ष में राजा वैररहित हो जाते हैं। संसार में आनन्द व्याप्त होता है। सभी प्राणी पौष्टिक कार्य में रत तथा यज्ञ कार्य में तत्पर होते हैं।

माघेऽब्दे सततं सर्वे पितृपूजनतत्परा:।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वृष्टि: कर्षकसंमता।।

माघ नामक वर्ष में सभी लोग पितरों की पूजा में संलग्न तथा माता-पिता की आज्ञा में रहते हैं। सुभिक्ष रहता है, सब का कल्याण होता है तथा निरोग रहते हैं एवं कृषकों के मन चाहे जल को मेघ देते हैं।

चौराश्च प्रबला: स्त्रीणां दौर्भाग्यं स्वजना: खला:।
क्वचित्वृष्टि: क्वचित्सस्यं क्वचिद्वृद्धिश्च फाल्गुने।।

फाल्गुन नामक वर्ष पू0फा0, उ0फा0 हस्त में चोरों का प्राबल्य, स्त्रीजाति को कष्ट, स्वजन विरोध, खण्डवृष्टि तथा कहीं-कहीं फसल उत्तम दृष्टिगोचर होती है।

चैत्रेऽब्दे मध्यमा वृष्टिरुत्तमान्नं सुदुर्लभम्।

सस्यार्घवृष्ट्यः स्वल्पा राजानः क्षेमकारिणः।।

चैत्र नामक वर्ष में सामान्य वृष्टि होती है। उत्तम अन्न प्रायः दुर्लभ हो जाता है। अन्न मंहगे होते हैं। वृष्टि स्वल्प होती है तथा राजा लोग जनता के अनुकूल कल्याण करते हैं।

वैशाखे धर्मनिरता राजानः सप्रजा भृशम्।

निष्पत्तिः सर्वसस्यानामभयोद्युक्त्चेतसः।।

वैशाख नामक वर्ष में प्रजा के सहित राजा धर्मकार्य में निरत होते हैं। सभी प्रकार का अन्न पैदा होता है तथा जनवर्ग निर्भय रहता है।

इसी प्रकार **ज्येष्ठ** नामक वर्ष में वृक्ष गुल्म और लताओं की वृद्धि तथा धान्य का नाश होता है, साथ ही धर्म के विचारक राजा के साथ शत्रुओं से कष्ट पाते हैं।

आषाढ़ नामक वर्ष में अवर्षण के कारण कहीं धान होगा और कहीं नहीं होगा तथा सभी राजा परस्पर जय की आकांक्षा वाले हो जाते हैं।

श्रावण नामक वर्ष में अनेक प्रकार के धान्यों से परिपूर्ण भूमि पर देवताओं का पूजन होता है। तथा पाप और पाखण्ड का नाश होकर भूमि सुशोभित होती है।

भाद्रपद नामक वर्ष में वर्ष का पूर्वार्द्ध सस्यसम्पन्न तथा उत्तरार्द्ध में धान का नाश होता है। वृष्टि मध्यम होती है तथा राजाओं में युद्ध होता है और कहीं-कहीं क्षेम होता है, कहीं-कहीं समृद्धि सुभिक्ष और कही-कहीं अतिवृष्टि होती है।

आश्विन नामक वर्ष में सुवृष्टि होती है तथा सभी धान्य सफली होते हैं एवं सभी जीव प्रसन्न रहते हैं।

सौयभागे चरन् भानां क्षेमारोग्यसुभिक्षकृत्।

विपरीतं गुरोर्याम्ये मध्ये च प्रतिमध्यमम्।।

यदि गुरु नक्षत्रों के उत्तर भाग से गमन करे तो क्षेम, आरोग्य एवं सुभिक्षकारी होता है। दक्षिण भाग से गमन करे तो विपरीत फल तथा मध्य भाग से गमन करे तो मध्यम फल देता है।

अनावृष्टिधूम्रनिभः करोति सुरपूजितः।

दिवादृष्टो नृपवधंत्वथवा राजनाशनम्।।

गुरु यदि धूम्रवर्ण का दिखाई दे तो अनावृष्टि हो, दिन में दिखाई दे तो राजा का वध हो अथवा राज्य का नाश होता है।

द्वादश राशि में गुरु का चार –

मेष राशि पर गुरु हो तो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषिका, शलभा, शुक, अत्यासन्नश्यराजान इन छ: का भय तथा भेड़-बकरियों का नाश होता है।

वृष राशिगत गुरु में अन्नों की उपज, प्रजा आरोग्य युत तथा कृषकों के अनुकूल वृष्टि होती है। किन्तु बालक, स्त्री और पशुओं की हानि होती है।

मिथुन राशि के गुरु मध्यम वृष्टि, धान्यहानि, राजाओं में युद्ध, जनता में भय तथा होता है एवं धान्य की वृद्धि होती है।

कर्क राशि पर गुरु के जाने से गायें अधिक दूग्ध देनेवाली, सज्जनों का सुख, स्त्रियाँ मदमाती तथा धान्य से सम्पन्न पृथ्वी होती है।

सिंह राशि के गुरु में विप्र धनहीन हो जायें तथा अतिवृष्टि, सर्पभय और युद्ध में राजाओं का नाश होता है।

कन्या राशि के गुरु में सुन्दर वृष्टि हो, राजा स्वस्थ और प्रसन्न रहें। ब्राह्मण धर्म रत तथा सम्पूर्ण प्रजा स्वस्थ रहती है ।

तुला राशि में जाने पर सभी प्रकार का धातु तथा मूल अत्यधिक होता है एवं सुवृष्टि से पृथ्वी धनधान्य परिपूर्ण होती है।

वृश्चिक राशि में गुरु के जाने पर मदोन्मत्त राजाओं में युद्ध से जनपदों का नाश होता है एवं वृष्टि अत्यल्प या अत्यन्त उग्र एवं भयानक होती है। जिससे व्यग्रता रहती है।

धनु के गुरु में इति भीति तथा राजभय, अल्पवृष्टि उग्रराज पीड़ा तथा राजा धनरहित हो या राजाओं के धन का नाश होता है।

मकर राशि के गुरु में जनता शत्रु रहित, पृथ्वी धान्य, वृष्टि एवं धन से पूर्ण तथा जनवर्ग रोगभय से मुक्त रहता है।

कुम्भ राशि के गुरु में जनता देवताओं से स्पर्धा करने वाली होती है। पृथ्वी फल पुष्प समर्धता एवं वृष्टि से परिपूर्ण एवं रोग भय से भूमि रहित होती है।

मीन राशि गत गुरु में धान्य, समर्घ और वृष्टि से भूमि पूर्ण तथा कहीं-कहीं रोग एवं कहीं भय होता है और राजा न्याय करने वाले होते हैं।

शुक्र चार –

सौम्यमध्यमयाम्येषु मार्गेषु त्रित्रिवीथय:।

शुक्रस्यदस्रभाद्यैश्च पर्यायैश्च त्रिभिस्त्रिभिः।।
नागेभैरावताश्चैव वृषभो गोजरद्गवाः।
मृगाजदहनाख्याः स्युयाम्यान्ता वीथयो नव।।

उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्ग में शुक की क्रमशः तीन-तीन वीथिया अश्विन्यादि क्रम से होती है। जिनका नाम क्रमशः १. नागवीथि, २. गजवीथि, ३. ऐरावत, ४. वृषभ, ५. गो, ६. जरद्गव, ७. मृग, ८. अज तथा ९. दहन वीथि याम्यान्त क्रम से होती हैं।

सौम्यमार्गेषु तिसृषु चरन् वीथिषु भार्गवः।
धान्यार्घवृष्टिसस्यानां परिपूर्तिं करोति सः।।

सौम्य मार्ग में नाग, गज तथा ऐरावतवीथियों से जब शुक्र गमन करता है तब धान्यार्घ वृष्टि और सस्य वृद्धि करता है।

मध्यमार्गेषु तिसृषु करोत्येषां तु मध्यमः।
याम्यमार्गेषु तिसृषु तेषामेवाधमं फलम्।।

मध्यमार्ग में (वृषभ-गो-जरद्गव) नामक वीथियों में जब शुक्र गमन करता है। तब मध्यम फलदायक होता है तथा याम्य मृग-अज-दहन नामक वीथियों से जब शुक्र गमन करता है तब अधम फलदायक होता है।

मघा से ५ नक्षत्रों में शुक्र के रहने पर पूर्व दिशा के मेघ शुभद होते हैं। स्वाती, विशाखा और अनुराधा में शक्र पश्चिम में शुभद होता है। इसके विपरीत अनावृष्टि होती है। तथा बुध के साथ हो तो सुवृष्टि होती है। कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और अमावस्या को यदि शुक्र उदय या अस्त होता है तो सुवृष्टि से भूमि को जलमय करता है। यदि गुरु और शुक्र परस्पर सप्तम राशि में होकर पूर्व और पश्चिम वीथि में हों तो अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और मरण प्रद होते हैं। मंगल, बुध,गुरु और शनि, शुक्र के अग्रसर होते हैं, तो क्रमशः युद्ध, वाताधिक्य, दुर्भिक्ष एवं जल का नाश करने वाले होते हैं। कृष्ण, रक्त वर्ण का शुक्र उपवनों का नाश कारक होता है।

शनिचार –

श्रवणानिलहस्तार्द्रा भरणी भाग्यभेषु च।
चरन् शनैश्चरो नृणां सुभिक्षारोग्यसस्यकृत्।।

श्रवण, स्वाती, हस्त, हस्त, आर्द्रा, भरणी, पू0फा0, नक्षत्रों में यदि शनि गमन करे तो सुभिक्ष, आरोग्य तथा धान्यकारक होता है।

जलेशसार्पमोहेन्द्र नक्षत्रेषु सुभिक्षकृत्।
क्षुत् शस्त्रावृष्टिदोर्मूलेऽहिर्बुघ्न्यान्त्यभयोर्भयम्।।

शतभिषा, आश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्रों में सुभिक्ष करने वाला, मूल नक्षत्र में भूख, शस्त्र भय तथा अवृष्टि कारक एवं उ0भा0 पद और रेवती नक्षत्रों में भयप्रद होता है।

मूर्धिन चैकं मुखे त्रीणि गुह्ये द्वे नयने द्वयम्।
हृदये पंच ऋक्षाणि वामहस्ते चतुष्टयम्।।
वामपादे तथा त्रीणि देया त्रीणि च दक्षिणे।
दक्षहस्ते च चत्वारि जन्मभाद्रविजस्थित:।
रोगो लाभस्तथा हानिर्लाभसौख्यं च बन्धनं।।
आयासं चेष्टयात्रा च अर्थलाभ: क्रामात्फलम्।
वक्रकृद्रविजस्येह तद्वक्रफलमीदृशम्।
करोत्येवं सम: साम्यं शीघ्रगो व्युत्क्रमात्फलम्।।

पुरुषाकार शनि के शिर पर १, मुख में ३, गुह्य भाग में, नेत्र में २, हृदय में ५, बायें हाथ में ४, बायें पैर में ३, दाहिने पैर में ३, और दाहिने हाथ में ४ नक्षत्र की स्थापना जन्म नक्षत्र से क्रमश: करना चाहिए। इस प्रकार क्रमश: रोग, अलाभ, हानि, लाभ, सौख्य, बन्धन, दु:ख, इष्ट यात्रा तथा अर्थलाभ यह फल समझना चाहिए। यदि शनि वक्री हो तो विपरीत फल देता है और सम में समफल तथा शीघ्रगामी हो तो भी विपरीत फल देता है।

राहुचार –

अमृतास्वादनाद्राहु: शिरश्छिन्नोपि सोऽमृत:।
विष्णुना तेन चक्रेण तथापि ग्रहतां गत:।।

अमृत पान करने के कारण भगवान विष्णु के द्वारा सुदर्शन चक्र से शिर के कट जाने पर भी राहु अमर हो गया तथा छाया ग्रह की श्रेणी में आ गया।

वरेण धातुरर्केन्दू ग्रसते सर्वपर्वणि।
विक्षेपावनतेर्वश्याद्राहुर्दूरं गतस्तयो:।।

श्लोक का अर्थ है कि ब्रह्मा से वरदान पाकर अमावस्या और पूर्णिमा पर क्रमश: सूर्य और चन्द्र को ग्रसता है। विक्षेप की अवनति के कारण राहु, सूर्य और चन्द्रमा से दूर चला गया।

सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण ६ मास के वृद्धि के द्वारा होता है। इन ग्रहण काल के पर्वों का अधिपति

कल्पादि के क्रम से सात देवता होते हैं।

ब्रह्मा, इन्दु, इन्द्र, कुबेर, वरूण, अग्नि और यम नामक अधिपति होते हैं। ब्रह्म नामक पर्व में ग्रहण होने से पशु, अन्न और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों की वृद्धि होती है।

ब्रह्म पर्व के सदृश सभी फल चन्द्र पर्व में भी समझना चाहिए। किन्तु इसमें बुद्धिजीवी वर्ग को कष्ट होता है। इन्द्र पर्व में राजाओं में विरोध तथा दु:ख एवं धान्यहानि होती है।

कुबेर नामक पर्व में ग्रहण होने से धनिक वर्गों के धन की हानि किन्तु अन्न की उपज होती है। तथा वरूण नामक पर्व में ग्रहण होने से राजाओं के लिए अशुभ तथा सामान्य जनता के लिए कल्याण प्रद होता है।

हुताशन पर्व में धान्य की वृद्धि, उत्तम वृष्टि तथा प्रजा का कल्याण। यम पर्व में अनावृष्टि, धान्यहानि तथा दुर्भिक्ष से जनवर्ग पीड़ित होता है।

दिशाक्रम से जाता हुआ राहु ब्राह्मणादि वर्णों को कष्टप्रद होता है। ग्रास के १० तथा मोक्ष के दश भेद होते हैं। देवताओं के द्वारा भी ग्रास और मोक्ष के दशविधभेद दृष्टिगोचर नहीं होते फिर सामान्य जनों की बात ही क्या है। अत: सिद्धान्त गणित द्वारा ग्रहों का आनयन कर उनका चार चिन्तन करना चाहिए।

केतुचार –

उत्पातरूपा केतूनां उदयास्तमया नृणाम्।
दिव्यान्तरिक्षा भौमास्तेशुभाशुभफलप्रदा:।।

केतु का उदय और अस्त होना उत्पात रूप है। ये केतु, दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम भेद से ३ प्रकार के हैं। ये मनुष्यों को शुभ तथा अशुभ फलदायक होते हैं।

जो केतु यज्ञध्वज, अस्त्र, भवन, रथ, वृक्ष, गज, स्तम्भ, शूल और गदा के आकार के हैं उन्हें अन्तरिक्ष केतु कहते हैं। नक्षत्रों में जो स्थित हैं उन्हें दिव्यकेतु और जो भूमि पर स्थित हैं उन्हें भौम केतु कहते हैं। अभिन्न रूप से एक भी केतु जीवों के अमंगल का कारण होता है।

यावन्तो दिवसा: केतुर्दश्यतेविविधात्मक:।
तावन्मासै: फलं वाच्यं मासैश्चैव तु वासरा:।।
ये दिव्या: केतवस्तेऽपि शश्वतीव्रफलप्रदा:।
अन्तरिक्षा मध्यफला भौमा मन्दफलप्रदा:।।

विविध प्रकार का केतु जितने दिनों तक दिखाई देता है उतने ही महीनों तक फल देता है। तथा जितने महीनों तक दिखाई दे उतने वर्षों तक उसका शुभाशुभ फल होता है जो दिव्यकेतु हैं वे भी कटुफलदायक, अन्तरिक्ष केतु मध्यम और भौमकेतु मन्द फल देने वाला होता है।

श्वेतकेतु छोटा चिकना और स्वच्छ होता हैतथा सुभिक्ष सूचक होता है। दीर्घकेतु यदि पूर्व दिशा में अस्त हो तो सुवृष्टिकारक होता है। इन्द्रधनुष के समान आकृतिवाला धूमकेतु अनिष्टप्रद और २,३,४ शूल के रूप में दिखाई देने वाला केतु राजा का अन्त करने वाला होता है।

मणिहार सुवर्णाभा दीप्तिमन्तोऽन्तर्कसूनवः।
केतवोभ्युदिताः पूर्वापरयोर्नृपघातकाः।।
बन्धूकबिम्बक्षतजशुकतुण्डाग्निसन्निभाः।
हुताशनप्रदास्तेपि केतवश्चाग्निसूनवः।।

मणि, हार तथा सोने की कान्ति के समान चमकने वाले केतु सूर्यपुत्र कहलाते हैं यदि ये उदय हों तो पूर्व तथा पश्चिम दिशा के राजाओं का नाश होता है। दोपहर का फूल, बिम्बा फल रूधिर, तोते का चोंच तथा अग्नि के वर्ण के केतु अग्निभय करते हैं तथा ये अग्नि के पुत्र कहे जाते हैं।

ब्रह्माण्ड नामक केतु प्रजा का नाशक होता है। ईशान कोण में शुक्रपुत्र श्वेत केतु अनिष्ट देने वाले होते है/ शनिपुत्र केतु दो शिखावाले स्वर्ण वर्ण के होतें हैं जो अनिष्टकारक होते है। गुरु के पुत्र केतु विकच नाम से प्रसिद्ध है, ये दक्षिण में दिखाई देते हैं और अशुभफलदायक होते है।

बुधपुत्र केतु सूक्ष्म आकार के तथा श्वेत होते है। यह घोर तथा चौर भयकारक होते हैं। मंगलपुत्र केतु कुंकुम नामक रक्तवर्ण वाला अनिष्टकारक होता है। अग्नि से उत्पन्न केतु विश्वरूप से प्रसिद्ध है। यह शुभप्रद होता है।

कृत्तिका नक्षत्र से उत्पन्न केतु धूमकेतु कहलाता है तथा यह प्रजावर्ग का नाश करने वाला होता है। प्रासाद, पर्वत, और वृक्षों पर दृष्टिगोचर होने वाला केतु राजा का नाश करता है। कुमुद पुष्प के समान केतु कुमुद केतु कहलाता है तथा सुभिक्षकारक होता है। आवर्त्त नामक केतु सूर्यावर्त सदृश होता है तथा शुभद है। संवर्त केतु तीन सिरवाला लाल वर्ण का अनिष्टकारक होता है तथा यह संध्या में दिखाई देता है।

बोध प्रश्न -

1. ग्रहचार शब्द का अर्थ क्या है।

क. ग्रहचलन ख. ग्रह ग. ग्रहस्वरूप घ. उपग्रह

2. सूर्य जब मकरादि राशियों में हो तो क्या होता है।

क. उत्तरायण ख. दक्षिणायन ग. उत्तर गोल घ. दक्षिण गोल

3. सूर्य यदि रक्त वर्ण का दिखलाई देता है तो निम्न में किसके लिए अशुभ होता है।

क. ब्राह्मण ख. क्षत्रिय ग. वैश्य घ. शूद्र

4. मिथुन और मकर राशिगत चन्द्रमा का सौम्य श्रृंग का फल क्या होगा।

क. श्रेष्ठ ख. अशुभ ग. हानि घ. कोई नहीं

5. बुध के उदय का फल कैसा होता है?

क. शान्तिप्रद ख. शुभप्रद ग. उपद्रवकारी घ. लाभकारी

6. गुरु यदि धूम्रवर्ण का दिखलाई दे तो क्या फल होगा –

क. अतिवृष्टि ख.अनावृष्टि ग. उल्कपात घ. शान्तिकारक

३.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्र में ग्रहचार का अर्थ है – ग्रहों का चलन। 'चर' शब्द चलन अर्थ में प्रयुक्त होता है। सूर्यादि ग्रहों का चार एवं चारफल का वर्णन समस्त संहिताचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित किया। यह निश्चित है कि किसी समय आश्लेषा के आधे भाग से रवि का दक्षिणायन और धनिष्ठा के आदि भाग से उत्तरायण की प्रवृत्ति थी, नहीं तो पूर्वशास्त्र में इसकी चर्चा नहीं होती। सम्प्रति कर्कादि से सूर्य के दक्षिणायन की और मकरादि से उत्तरायण की प्रवृत्ति होती है। इस तरह कथित अर्थ के अभाव का नाम विकार है। ये सब प्रत्यक्ष देखने से स्पष्ट होते है। सूर्य मण्डल में दण्ड की आकृति, कबन्ध (बिना सिर का शरीर), ध्वांक्ष (काक) की आकृति अथवा कील दृष्टिगोचर होने पर व्याधि, भय एवं चोर भय तथा धन का नाश होता है। श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण एवं मिश्रित रंग यदि सूर्य का दृष्टिगोचर हो तो क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्त्यजों को कष्ट होता है। दो तीन या चार वर्ण यदि एक साथ दिखलाई दे तो राजा का अन्यथा प्रजा का नाश होता है। यदि सूर्य की उर्ध्वगामी किरणें ताम्र वर्ण की दिखाई दें तो राजा का नाश होता है।यदि सूर्य की उर्ध्वगामी किरणें पीतवर्ण की हों तो राजपुत्र श्वेत होने पर पुरोहित, चित्रित होने पर जनता, धूम्रवर्ण होने पर राजा तथा पिंगल होने पर मेघों की क्षति होती है। इसी प्रकार मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि ग्रह का भी चार होता है। द्वादश राशियों का चार फल

कहा गया है।

३.६ पारिभाषिक शब्दावली

उत्तरायण – मकरादि छ: राशियों में सूर्य की स्थिति का नाम उत्तरायण है।

ग्रहचार - ग्रहचलन

रक्त वर्ण – लाल रंग

राशिगत – राशि में गया हुआ

वक्री – उल्टा

अनावृष्टि – अल्प वर्षा

संक्रमण – परिवर्तन

३.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. क
3. ख
4. क
5. ग
6. ख

३.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर:, टीका – पं. अच्युतानन्द झा

2. नारदसंहिता – टीका – पं. रामजन्म मिश्र

3. वशिष्ठ संहिता – टीका – आचार्य गिरिजाशंकर शास्त्री

३.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. भृगु संहिता
2. वशिष्ठ संहिता
3. लोमश संहिता
4. रावण संहिता

३.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहचार से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
2. सूर्य एवं चन्द्रमा का ग्रहचार का वर्णन कीजिये।
3. नारद संहिता के अनुसार गुरु एवं शुक्र ग्रह चार का उल्लेख कीजिये।
4. वृहत्संहिता के अनुसार सूर्यचार का प्रतिपादन कीजिये।
5. सूर्यादि समस्त ग्रहों का चार वर्णन कीजिये

इकाई - 4 ग्रह वर्षफल विवेचन

इकाई की संरचना

४.१. प्रस्तावना

४.२. उद्देश्य

४.३. ग्रहवर्ष फल- सामान्य परिचय

४.३.१ वर्षपति निर्णय

४.३.२ शक-संवतादि विचार

४.४. वृहत्संहिता के अनुसार सूर्यादि ग्रहों के वर्षफल विवेचन

४.५. सारांश

४.६. पारिभाषिक शब्दावली

४.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

४.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

४.९. सहायक पाठ्य सामग्री

४.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

४.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-604 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – ग्रह वर्षफल विवेचन। इससे पूर्व आप सभी ने संहिता ज्योतिष से जुड़े ग्रहचार सम्बन्धित विषय का अध्ययन कर लिया है अब आप सूर्यादि ग्रहों का वर्षफल का अध्ययन करेंगे।

संहिता ज्योतिष में सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि ग्रहों के वर्षफल का वर्णन किया गया है। वस्तुत: ग्रहों के वर्षफल सम्बन्धित विवरण को ही ग्रह वर्षफल के नाम से जानते है।

अत: आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े सूर्यादि समस्त ग्रहों का वर्षफल का अध्ययन हम इस इकाई में करते है।

४.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वर्षफल किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि सूर्य तथा चन्द्रमा का वर्षफल क्या है।
- बुध एवं गुरु के वर्षफल को समझ सकेंगे।
- शुक्र एवं शनि के वर्ष फल को जान लेंगे।
- वर्षफल में विशेष तथ्यों को समझा सकेंगे।

४.३. वर्ष फल परिचय

वर्षफल संहिता ज्योतिष का महत्वपूर्ण अध्याय माना गया है। इसमें प्रत्येक वर्ष के अधीश्वर तथा उसके शुभाशुभ फल का निर्णय किया जाता है। चैत्रादि मासों में क्रमश: सूर्य का संक्रमण प्रमिमास होते रहता है, क्योंकि सूर्य ३० दिन में ३० अंश अर्थात् १ राशि का परिक्रमण करता है। अब आइए यहाँ वर्षफल का अध्ययन करते हैं।

४.३.१ वर्षपति का निर्णय -

चैत्राद्येष्वपि मासेषु मेषाद्या: संक्रमा: क्रमात्।
चैत्रादितिथिवारेशस्तस्याब्दस्य त्वधीश्वर:।।

अर्थात् चैत्रादि मासों में क्रमश: मेषादि राशियों की संक्रान्ति होती है। तथा चैत्र शुक्लपक्ष प्रतिपदा के दिन जो वार पड़ता है उस वार का अधिपति ग्रह उस वर्ष का अधीश्वर (राजा) होता है।

मेषसंक्रान्तिवारेशो भवेत्सोपि च भूपति:।

कर्कटस्य तु वारेशो सस्येशस्तत्फलं तत:।।

मेष संक्रान्ति का वारेश भी भूपति होता है तथा कर्क संक्रान्ति का वारेश सस्येश होता है।

तुलासंक्रान्तिवारेशो रसानामधिप: स्मृत:।

मकराधिपति: साक्षाद्रसस्याधिपति: क्रमात्।।

तुला संक्रान्ति का वारेश रसाधिपति या रसेश कहलाता है तथा मकर संक्रान्ति का वारेश भी रसाधिपति या निरसेश कहलाता है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा दिवाकर:।

तस्मिन्नब्दे नृपक्रोध: स्वल्पसस्यार्धवृष्टिकृत्।।

जिस वर्ष वर्षपति राजा मन्त्री या सस्येश यदि **सूर्य** हो तो उस वर्ष राजा क्रोधयुक्त रहता है, अन्न की उपज कम होती है तथा वृष्टि भी कम ही होती है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा निशाकर:।

तस्मिन्नब्दे करोति क्ष्मां पूर्णां शालिफलेक्षुभि:।।

जिस वर्ष वर्षपति राजा मन्त्री या सस्येश **चन्द्रमा** होता है, उस वर्ष पृथ्वी को धान, फल तथा ईख से परिपूर्ण करता है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा महीसुत:।

तस्मिन्नब्दे चौरवह्निवृष्टिक्षुद्भयकृत्सदा।।

अब्दपति राजा मन्त्री या सस्येश **मंगल** हो तो उस वर्ष चोरों से भय, अग्निभय, वृष्टिभय तथा भूख से पीड़ा होती है। अर्थात् भूखमरी होती है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा शशांकज:।

अतिवायुं स्वल्पवृष्टिं करोति नृपविग्रहम्।।

अब्दपति राजा मन्त्री या सस्येश **बुध** हो तो उस वर्ष वायु प्रकोप, स्वल्प वृष्टि तथा राजाओं में युद्ध होता है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा सुरार्चित:।

करोत्यनुत्तमां धात्रीं यज्ञधान्यार्थवृष्टिभि:।।

अब्दपति राजा मन्त्री या सस्येश **गुरु** हो तो उस वर्ष यज्ञ, धान्य तथा वृष्टि से पृथ्वी परिपूर्ण होती है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा भृगो: सुत:।

करोति सर्वां संपूर्णां धात्रीं शालिफलेक्षुभि:।।

अब्दपति, राजा या सस्येश यदि **शुक्र** होता है तो भूमि धान फल तथा ईख आदि से परिपूर्ण होती है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वार्कनन्दन:।

आतंकश्चौरवह्नयंबुधान्यभूपभयप्रद:।।

अब्दपति, राजा सस्येश यदि **शनि** हो तो, मृत्यु या आतंक, चौर, अग्नि, जल, धान्य हानि तथा राजभय होता है।

४.३.२ शक-संवतादि विचार

शक्-संवतादि प्रवर्त्तक राजाओं के नाम –

श्रीवीर विक्रमकृता इह संवदाख्या

अब्दास्तत: शकनृपेण कृता: शकाब्दा:।

श्रीमत् सिकन्नरनरेशकृता: सनाख्या

ज्ञेया इमे बुधजनैर्जगति प्रसिद्धा:।।

अर्थात् श्री वीर विक्रम कृत संवत्, शकनृपकृत शक और सिकन्नरनरेश कृत सनाब्द के प्रवर्त्तक कहे गये है। इन्हीं से इन सब की परम्परा आरम्भ हुई। ऐसा आप सभी को समझना चाहिए।

वर्षप्रवृत्तिकाल निरूपणम् –

चैत्रस्य कृष्णप्रतिपत्प्रवृत्ते संवत्प्रवृत्तिस्त्वजगं दिनेशे।

शाकस्य कृष्ण प्रतिपत्प्रवृत्ते: स्याच्छ्रावणस्यापि सनप्रवृत्ति:।।

चैत्र कृष्ण प्रतिपत्तिथि के आरम्भ हसे संवत्त् की प्रवृत्ति, सूर्य की मेष संक्रानित से शकाब्द की और श्रावण कृष्ण प्रतिपतिथि के आरम्भ से सनाब्द की प्रवृत्ति होती है।

शक से वर्ष फल –

सूर्याश्रयत्वाच्छकवत्सराणामुक्ता फलार्थं खलु मुख्यताऽत:।

वक्ष्ये शकाब्दब्दफलं जनानां हिताय गर्गादिमुनिप्रणीतम्।।

शकाब्द को सूर्याश्रय होने से फलादेश में उसकी प्रधानता है, अत: गर्ग आदि मुनि प्रणीत वर्षफल को जनहिताय शकाब्द द्वारा कहा जा रहा है।

वर्षलग्न शुभाशुभ विचार –

यस्मिन्देशे यत्र लग्ने शकस्य

प्रारम्भ: स्यात्तत्रतद्वर्षं लग्नम्।

तच्चेत्स्वामी सौम्य युक्तेक्षितं वा
लग्नस्वामी शोभनः शोभनक्षे।।

जहाँ जिस लग्न में शकाब्द आरम्भ हो, वहाँ का वह वर्ष लग्न होता है। अर्थात् मेषसंक्रान्ति के प्रारम्भ में जो लग्न हो, वह वर्ष लग्न है। वर्षलग्न अपने अधिपति एवं शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो, अथवा लग्नेश शुभराशि में हो तो वर्ष शुभ होगा, ऐसा जानना चाहिए।

स्वर्क्षेतुंगे कोणकेन्द्रे सुहृदभे, सौम्यैर्युक्तो वीक्षितः शोभनोब्दः।
यद्यन्यर्क्षे क्रूरयुक्तेक्षितो वा लुप्तो नीचे नैवशस्तस्तदानीम्।।

अपनी राशि में या उच्च में अथवा लग्न से १,४,७,१०,९,५ इन स्थानों में से किसी एक स्थान में हो, या मित्रग्रह की राशि में हो और शुभ ग्रह से युत दृष्ट हो तब वह वर्ष शुभ होता है। यदि उक्त स्थान से अन्य स्थान में हो और पापग्रह से युत दृष्ट हो या अस्त अथवा अपनी नीच राशि में हो, तब वर्ष शुभ नहीं होता है।

शुभाशुभवर्षफल

प्रजाः प्रमुदिताः सर्वा भूरिशस्या वसुन्धरा।
सुवृष्टिः शोभने वर्षे जायते नात्र संशयः।।
नृपभीतिर्महत्कष्टा महार्घं च धरातलम्।
भवेत्सूर्यकरैतप्तं दुर्भीक्षं क्रूरवत्सरे।।

शुभवर्ष में सभी प्राणी प्रसन्न रहते है और अच्छी उपज एवं सुवृष्टि होती है, इसमें सन्देह नहीं है। अशुभ वर्ष में राजभय, विशेषकष्ट, महर्घत, विशेषगर्मी और दुर्भिक्ष होता है।

शक से सुभिक्षादि ज्ञान –

त्रिघ्नेशके बाणयुतेऽद्रिभक्ते शेषात्क्रमेणाब्दफलं प्रवाच्यम्।
सुभीक्षदुर्भीक्ष सुभीक्षकानि महर्घदुर्भीक्षसमत्वनाशाः।।

त्रिगुणित शकाब्द में ५ जोड़कर ७ का भाग देने पर एक आदि शेष के क्रम से सुमिक्ष, दुर्भिक्ष, सुभिक्ष, महर्घता, दुर्भिक्ष, सम और विनाश ये फल जानना चाहिए।

प्रश्नकर्ता के अनुसार शुभाशुभ वर्ष ज्ञान –

तिथिवारर्क्षयोगानां योगः संवत्सरान्वितः।
प्रष्टुर्नामाक्षरैर्युक्तस्त्रिहतः शेषतः फलम्।।
शशिशेषे भवेत्क्लेशः समताद्विमिते तथा

त्रिशेषे बहुधा सौख्यं वदन्ति मुनयोऽमलाः।।

प्राश्निक जिस दिन वर्षफल ज्ञान के लिए प्रश्न करें, उस दिन के तिथि, वार, नक्षत्र और योगों की संख्या को जोड़कर उसमें संवत्सर और पूछने वाले के नामाक्षर की संख्या जोड़ दें, योगफल में ३ का भाग देकर शेष के क्रम से फल जानना चाहिए। १ शेष में क्लेश, २ में मध्यम और ३ शेष में सुख होता है।

चैत्रशुक्लप्रतिपतिथि फल –

चैत्रस्य शुक्लप्रतिपत्तिथौ चेद्वारो खेश्चित्रितवृष्टिरब्दे
चन्द्रस्य वारो बहुवृष्टिदः स्यात् भौमो यदा शोषमुपैति पृथ्वी।
सौम्यो गुरुर्वा भृगुजो यदि स्यात् संपत्प्रयुक्ता धरणी सुशस्या
वारो यदि सूर्यसुतस्य दैवाद् दुर्भीक्षदुःखैर्विकलाधरित्री।।

अर्थात् चैत्रशुक्ल प्रतिपदा तिथि यदि रविवार को पड़े तो चित्रवृष्टि, सोमवार को बहुवृष्टि, मंगल में न्यून वृष्टि, बुध, गुरु और शुक्र वारों में धान्यादि की उपज अच्छी होती है। यदि शनिवार पड़े तो दुर्भीक्ष और अनेक उत्पात से पृथ्वी के प्राणी विकल होते है।

पौषामावस्याफल –

रविकुजकिजवासरकेषु चेत्सहसिदर्शतिथिर्गिरजेऽखिला।
बहुधर्नर्धरणी परिपूरिता सकलशस्ययुता मुदति प्रजा।।

अर्थात् यदि पौष की अमावस्या तिथि, रवि, मंगल या शनि वार को पड़े तो उस वर्ष सम्पूर्ण पृथ्वी अनेक संपत्ति और विविध अनाजों से परिपूर्ण रहती है तथा सभी प्रजा प्रसन्न रहती है। ऐसा आपको जानना चाहिए।

४.४ वर्ष फल विचार

अब यहाँ वृहत्संहिता ग्रन्थ के अनुसार वर्ष फल का उल्लेख करते हैं-

सूर्य का वर्षफल विचार -

सर्वत्र भूर्विरलसस्ययुता वनानि
दैवाद् बिभक्षयिषुदंष्ट्रिसमावृतानि।
नद्यश्च नैव हि पयः प्रचुरं स्त्रवन्ति

रुग्भेषजानि न तथातिबलान्वितानि।।
तीक्ष्णं तपत्यदितिजः शिशिरेऽपि काले
नात्यम्बुदा जलमुचोऽचलसन्निकाशाः।
नष्टप्रभर्क्षगणशीतकरं नभश्च
सीदन्ति तापसकुलानि सगोकुलानि।।
हस्त्यश्वपत्तिमदसह्राबलैरुपेता
बाणासनासिमुशलातिशयाश्चरन्ति
घ्नन्तो नृपा युधि नृपानुचरैश्च देशान्
संवत्सरे दिनकरस्य दिनेऽथ मासे।।

सूर्य से वर्ष, मास या दिन में पृथ्वी पर सब जगह अल्प धान्य, दैववश भक्षण की इच्छा करने वाले दंष्ट्रीगण (सर्प, सूअर आदि जन्तुओं) से संयुत वन, नदियों में अल्प जल, रोगनाश के लिये वीर्ययुत ओषधि का अभाव, शिशिर काल (माघ-फाल्गुन) में भी सूर्य का भयंकर ताप, पर्वत के समान मेघ से भी अधिक वृष्टि का अभाव, आकाशस्थित नक्षत्र और चन्द्र में दीप्ति का अभाव, तपस्वीगण शोकयुत और गौओं के समुदाय दुःखी होते हैं। संग्राम में हाथी, घोड़ा, पदातियों से युत असह्य सैन्य, धनु, खड्ग और मुशलों से युत मन्त्री आदि के साथ होकर राजा लोग देशों का नाश करते हुये विचरण करते हैं।

चन्द्र वर्षफल -

तोयानि पद्मकुमुदोत्पलवन्त्यतीव
फुल्लद्रुमाण्युपवनान्यलिनादितानि।
गावः प्रभूतपयसो नयनाभिरामा
रामा रतैरविरतं रमयन्ति रामान्।।
गोधूमशालियवधान्यवरे क्षुवाटा
भूः पाल्यते नृपतिभिर्नगराकराढया।
चित्यङ्किता क्रतुवरेष्टिविघुष्टनादा
संवत्सरे शिशिरगोरभिसम्प्रवृत्ति।।

चन्द्र के वर्ष, मास या दिन में चलित पर्वत, सर्प, कज्जल, भ्रमर और गवल (मषिश्रृंग) के सामन निर्मल जल से पृथ्वी को पूर्ण करते हुये तथा विरही जनों के औत्सुक्यजनक गौरतयुत ध्वनियों से दिशाओं को पूर्ण करते हुये मेघों से आच्छादित आकाश, कमल और कुमुद से युत जल, प्रफुल्लित

वृक्ष और शब्दायमान भ्रमरों से युत उपवन, अधिक दूध देने वाली गौ, नेत्रों से सुन्दरी स्त्री (निरन्तर अपने पति को आनन्द देने वाली), गेहूँ, शाठी, यव, श्रेष्ठ धान्य और इक्षुवाटों से युत, नागरिक आकरों (अर्थोत्पत्ति स्थानों) से युत, अग्नि स्थानों से व्याप्त तथा श्रेष्ठ यज्ञ और इष्टि (पुत्रकाम्यादि यज्ञ) से समन्वित पृथ्वी राजा से परिपालित होती हैं।

भौम का वर्षफल-

वातोद्धतश्चरति वहिरतिप्रचण्डो
ग्रामान् वनानि नगराणि च सन्दिधक्षुः।
हाहेति दस्युगणपातहता रटन्ति
निःस्वीकृता विपशवो भुवि मर्त्यसङाः।।
अभ्युन्नता वियति संहतमूर्तयोऽप
मुंचन्ति कुत्रचिदपः प्रचुरं पयोदाः।
सीम्नि प्रजातमपि शोषमुपैति सस्यं
निष्पन्नमप्यविनयादपरे हरन्ति।।
भूपा न सम्यगभिपालनसक्तचित्ताः
पित्तोत्थरुक्प्रचुरता भुजगप्रकोपः।
एवंविधैरुपहता भवति प्रजेयं
संवत्सरेऽवनिसुतस्य विपन्नसस्या।

मंगल के संवत्सर, मास या दिन में वायु से संचालित ग्राम, वन और नगरों का दग्ध करने की इच्छा रखने वाली भयंकर अग्नि चलती हैं। चोरों से निर्धन किये हुये पीड़ित मनुष्यगण हाहाकार करते हैं। आकाश में संगठित मूर्ति वाले मेघ कहीं भी अधिक वृष्टि नहीं करते। निम्न स्थान में उत्पन्न धान्य सूख जाते हैं तथा पके हुये धान्य भी वज्रपात आदि उत्पातों से नष्ट हो जाते हैं। राजा लोग धर्मपालन में तत्पर नहीं रहते हैं। पैत्तिक रोगों की अधिकता होती हैं। सर्पों से लोगों को पीड़ा होती हैं। इस तरह मंगल के स्वामित्व में प्रजागण पीड़ित और धान्यों का नाश होता हैं।

बुध का वर्ष फल-

मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणां
गान्धर्वलेख्यगणितास्त्रविदां च वृद्धिः।
पिप्रीषया नृपतयोऽद्भुतदर्शनानि
दित्सन्ति तुष्टिजननानि परस्परेभ्यः।।

वार्ता जगत्यवितथा विकला त्रयी च
सम्यक् चरत्यपि मनोरिव दण्डनीतिः।
अध्यक्षरस्वभिनिविष्टधियोऽपि केचि-
दान्वीक्षिकीषु च परं पदमीहमानाः।।
हास्यज्ञदूतकविबालनपुंसकानां
युक्तिज्ञसेतुजलपर्वतवासिनां च।
हार्दिं करोति मृगलांगनछनजः स्वकेऽब्दे
मासेऽथवा प्रचुरता भुवि चौषधीनाम्।।

बुध के वर्ष, मास या दिन में प्रपंचों में कुशल, इन्द्रजाल विद्या को जानने वाले, आश्चर्य देखने वाले, अर्थोत्पत्ति स्थान को जानने वाले, नगरों में रहने वाले, गान विद्या जानने वाले, लेखक, गणितज्ञ और अस्त्र विद्या जानने वाले उन्नतियुत होते हैं। राजा लोग परस्पर प्रीति बढ़ाने की इच्छा से आश्चर्यजनक और हर्षोत्पादक द्रव्य परस्पर एक-दूसरे को देने की इच्छा करते हैं। वार्ता (कृषि, पशुपालन और वाणिज्य) अवितथा (सफल) होती हैं। त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद) का अत्यधिक पाठ होता हैं। मनु राजा से रचित दण्डनीति नामक पुस्तकोक्त नीति की तरह नीति चलती है अर्थात् जिस तरह मनु राजा प्रजारक्षण करते थे, उसी तरह उस वर्ष के राजा अपनी प्रजा की रक्षा करते हैं। कोई अध्यात्म विद्या (योगशस्त्र) में और कोई आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या) में विरत होते हैं। हास्यज्ञ, दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्तिज्ञ, सेतु (स्थल), जल और पर्वत पर निवास करने वाले प्रसन्न होते हैं तथा पृथ्वी पर औषधियों की अधिकता होती हैं।

गुरु का वर्षफल -

ध्वनिरुच्चरितोऽध्वरे द्युगामी विपुलो यज्ञमुषां मनांसि भिन्दन्।
विचरत्यनिशं द्विजोत्तमानां हृदयानन्दकरोऽध्वरांशभाजाम्।।
क्षितिरुत्तमसस्यवत्यनेकद्विपपत्त्यश्वधनोरुगोकुलाढया।
क्षितिपैरभिपालनप्रवृद्धा द्युचरस्पर्द्धिजना तदा विभाति।।
विविर्धर्वियदुन्नतैः पयोदैर्वृतमुर्वीं पयसाभितर्पयद्भिः।
सुरराजगुरोः शुभे तु वर्षे बहुसस्या क्षितिरुत्तमर्द्धियुक्ता।।

गुरू के शुभ वर्ष, मास या दिन में यज्ञों में रात्रिवर्जित काल में श्रेष्ठ ब्राहाम्ण से उच्चरित, विस्तीर्ण, स्वर्ग तक पहुँचने वाली, यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों से मन को भेदन करने वाली और इन्द्रादि के मन को प्रसन्न करने वाली वेदध्वनि होती हैं। राजाओं से अच्छी तरह परिरक्षित, उत्तम

धान्य, बहुत हाथी, पदाति, घोड़ा, धन और विस्तृत गोकुलों से पृथ्वी परिपूर्ण होती हैं। देवता के समान मनुष्य होते हैं। सदा भूमि को जल से परिपूण करते हुये उन्नत, विविध मेघों से आकाश व्याप्त होता हैं तथा बहुत तरह के धान्य और समृद्धि से युत पृथ्वी होती हैं।

विशेष- यहाँ पर शुभ वर्ष इसलिये कहा गया हैं कि बृहस्पतिचारोक्त पिंगल-कालयुत और रौद्रनामक बृहस्पति के वर्ष अशुभ हैं। अतः इस वर्ष का स्वामी होने पर बृहस्पति का सम्पूर्ण फल नहीं प्राप्त होता; किन्तु प्रभव, शुक्ल, प्रमोद आदि वर्षों का स्वामी होने पर बृहस्पति का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता हैं।

शुक्र का वर्ष फल -

शालीक्षुमत्यपि धरा धरणीधराभ-
धाराधरोज्झितपयः परिपूर्णवप्रा।
श्रीमत्सरोरुहतताम्बुतडागकीर्णा
योषेव भात्यभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी।।
क्षत्रं क्षितौ क्षपितभूरिबलारिपक्ष-
मुद्घुष्टनैकजयशब्दविराविताशम्।
संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गां
गां पालयन्त्यवनिपा नगराकराढयाम्।।
पेपीयते मधु मधौ सह कामिनीभि-
र्जेगीयते श्रवणहारि सवेणुवीणम्।
बोभुज्यतेऽतिथिसुहृत्स्वजनैः सहान्न-
मब्दे सितस्य मदनस्य जयावघोषः।।

शुक्र के वर्ष, मास या दिन में शाली और इक्षु (ईख -गन्ना) से युत, पर्वत के समान मेघों से गिरे हुये जल से परिपूर्ण तट वाली, सुन्दर कमल और जल से परिपूर्ण तालाब से व्याप्त; अतः विविध वर्णों से युत पृथ्वी सम्पूर्ण भूषणों से युत स्त्री की तरह शोभित होती हैं। पृथ्वी पर शत्रुपक्ष के बहुत सेनाओं को नाश करने से उद्घोषित जयशब्दों से सभी दिशाओं को पूर्ण करने वाले राजवर्ग होते हैं। आनन्दयुत सज्जनगण, विनष्ट दर्जन-गण और अर्थोत्पतिस्थानों से युत पृथ्वी होती हैं। वसन्त समय में स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक बार-बार मद्यपान करती हैं, बाँसुरी और वीणा के साथ श्रवणसुखद गीत गाती हैं, अभ्यागत, मित्र और बन्धुओं के साथ बार-बार भोजन करती हैं तथा सब जगह कामदेव का जय-जयकार होता हैं।

शनि वर्षफल-

उद्वत्तदस्युगणभूरिरणाकुलानि राष्ट्राण्यनेकपशुवित्तविनाकृतानि।
रोरूयमाणहतबन्धुजनैर्जनैश्च रोगोत्तमाकुलकुलानि बुभुक्षया च।।
वातोद्धताम्बुधरवर्जितमन्तरिक्ष-
मारुग्णनैकविटपं च धरातलं द्यौः।
नष्टार्कचन्द्रकिरणातिरजोऽवनद्धा
तोयाशयाश्च विजलाः सरितोऽपि तन्व्यः।।
जातानि कुत्रचिदतोयतया विनाश-
मृच्छन्ति पुष्टिमपराणि जलोक्षितानि।
सस्यानि मन्दमभिवर्षति वृत्रशत्रु-
र्वर्षे दिवाकरसुतस्य सदा प्रवृत्ते।।

शनि के वर्ष, मास या दिन में चोरों से सम्बन्धित युद्धों से व्याप्त, पशु और धानों से रहित, संग्राम में बन्धुजनों के मारण से बार-बार रोते हुये वंशों से युत, प्रधान रोग तथा क्षुधा से व्याकुल राष्ट्र होते हैं, वायु से उड़ायें गये मेघों से रहित आकाश होता हैं, अनेक तरह से नष्ट वृक्षों से युत पृथ्वी होती हैं, सूर्य और चन्द्रकिरणों से रहित आकाश होता हैं, धूलियों से स्थागित वापी, कूप और तालाब होते हैं तथा नदियों में अत्यन्त कम जल होता हैं। इन्द्र अल्प वर्षा करता हैं, इसलिये कहीं-कहीं पर जल के विना धान्य नष्ट हो जाते हैं और कहीं-कहीं पर जल से सिक्त होकर पुष्ट होते हैं।

वर्षफल में विशेष विचार

अणुरपटुमयूखो नीचगोऽन्यैर्जितो वा
न सकलफलदाता पुष्टिदोऽतोऽन्यथा यः।
यदशुभमशुभेऽब्दे मासजं तस्य वृद्धिः
शुभफलमपि चैवं याप्यमन्योन्यतायाम्।।

जो ग्रह सूक्ष्म, अस्पष्ट किरण वाला, नीच स्थानस्थित या ग्रहयुद्ध में पराजित हो, वह सम्पूर्ण फल देने वाला नहीं होता हैं। इससे विपरीत लक्षणयुत होने से सम्पूर्ण फल देने वाला होता हैं। अशुभ वर्ष में रवि, मंगल और शनि के अशुभ मासफल की वृद्धि होती हैं। इससे या सिद्ध होता है कि अशुभ ग्रह के वर्ष में अशुभ ग्रह का मासाधिपतित्व होने पर अत्यन्त अशुभ फल होता हैं तथा वर्षाधिप, मासाधिप-दोनों शुभग्रह हों तो शुभ फल कह वृद्धि और एक शुभ एवं दूसरा अशुभ हो तो याप्य (अल्प फल) होता हैं।

बोध प्रश्न

1. सूर्य की मासिक गति है।
   क. ३० अंश ख.४० अंश ग.५० अंश घ.६० अंश
2. कर्क संक्रान्ति का वारेश क्या होता है।
   क. मेघेश ख. रसेश ग. सस्येश घ. सुखेश
3. विक्रम संवत् का प्रचलन किसके काल से हुआ है।
   क. विक्रमादित्य ख. मगध ग. अशोक घ. मुगल
4. तुला संक्रान्ति का वारेश निम्न में होता है-
   क. सस्येश ख. रसेश ग. वर्षेश घ. मेघेश
5. चन्द्र के वर्ष मास दिन में वर्षफल क्या होगा।
   क. सर्वमंगलकारी ख. दु:खकारी ग. अशुभकारी घ. कोई नहीं

४.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि वर्षफल संहिता ज्योतिष का महत्वपूर्ण अध्याय माना गया है। इसमें प्रत्येक वर्ष के अधीश्वर तथा उसके शुभाशुभ फल का निर्णय किया जाता है। चैत्रादि मासों में क्रमश: सूर्य का संक्रमण प्रमिमास होते रहता है, क्योंकि सूर्य ३० दिन में ३० अंश अर्थात् १ राशि का परिक्रमण करता है। सूर्य से वर्ष, मास या दिन में पृथ्वी पर सब जगह अल्प धान्य, दैववश भक्षण की इच्छा करने वाले दंष्ट्रीगण (सर्प, सूअर आदि जन्तुओं) से संयुत वन, नदियों में अल्प जल, रोगनाश के लिये वीर्ययुत ओषधि का अभाव, शिशिर काल (माघ-फाल्गुन) में भी सूर्य का भयंकर ताप, पर्वत के समान मेघ से भी अधिक वृष्टि का अभाव, आकाशस्थित नक्षत्र और चन्द्र में दीप्ति का अभाव, तपस्वीगण शोकयुत और गौओं के समुदाय दु:खी होते हैं। संग्राम में हाथी, घोड़ा, पदातियों से युत असह्य सैन्य, धनु, खड्ग और मुशलों से युत मन्त्री आदि के साथ होकर राजा लोग देशों का नाश करते हुये विचरण करते हैं। चन्द्र के वर्ष, मास या दिन में चलित पर्वत, सर्प, कज्जल, भ्रमर और गवल (मषिश्रृंग) के सामन निर्मल जल से पृथ्वी को पूर्ण करते हुये तथा विरही जनों के औत्सुक्यजनक गौरतयुत ध्वनियों से दिशाओं को पूर्ण करते हुये मेघों से आच्छादित आकाश, कमल और कुमुद से युत जल, प्रफुल्लित वृक्ष और शब्दायमान भ्रमरों से युत उपवन, अधिक दूध देने वाली गौ, नेत्रों से सुन्दरी स्त्री (निरन्तर अपने पति को आनन्द देने वाली),

गेहूँ, शाठी, यव, श्रेष्ठ धान्य और इक्षुवाटों से युत, नागरिक आकरों (अर्थोत्पत्ति स्थानों) से युत, अग्नि स्थानों से व्याप्त तथा श्रेष्ठ यज्ञ और इष्टि (पुत्रकाम्यादि यज्ञ) से समन्वित पृथ्वी राजा से परिपालित होती हैं। इसी प्रकार भौमादि ग्रहों का वर्षफल भी होता है।

४.६ पारिभाषिक शब्दावली

रसेश – तुला संक्रान्ति का वारेश

सस्येश - कर्क संक्रान्ति का वारेश

संवत् – श्री विक्रम के काल से आरम्भ हुआ

वर्षेश – वर्ष का स्वामी

वर्षफल – वर्ष का शुभाशुभ फल

वृष्टि – वर्षा

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्।

४.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. ग
3. क
4. ख
5. क

४.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीका – पं. अच्युतानन्द झा।

2. नारदसंहिता – टीकाकार – पं. रामजन्म मिश्र।

3. अद्भुतसागर – मूल लेखक - बल्लालसेन।

4. वशिष्ठ संहिता- टीकाकार – प्रोफेसर गिरिजाशंकर शास्त्री

४.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वृहत्संहिता

2. वशिष्ठ संहिता

3. नारद संहिता

4. भृगु संहिता

४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. वर्षफल का परिचय दीजिये।

2. शक्-संवतादि का वर्णन कीजिये।

3. वर्षेश, सस्येश, रसेशादि का उल्लेख कीजिये।

4. वृहत्संहिता के अनुसार सूर्य, चन्द्र एवं भौम का वर्ष फल लिखिये।

5. गुरु, शुक्र एवं शनि ग्रह का वर्षफल लिखिये।

6. वर्षफल में विशेष का उल्लेख कीजिये।

इकाई - 5 नक्षत्र गत पदार्थ विश्लेषण

इकाई की संरचना

५.१. प्रस्तावना

५.२. उद्देश्य

५.३. नक्षत्र गत - सामान्य परिचय

५.४. कृत्तिकादि नक्षत्र गत पदार्थ विश्लेषण

५.५. सारांश

५.६. पारिभाषिक शब्दावली

५.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

५.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

५.९. सहायक पाठ्य सामग्री

५.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

५.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-604 के प्रथम खण्ड की पाँचवीं इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – नक्षत्र गत पदार्थ विश्लेषण। इससे पूर्व आप सभी ने ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख गणित एवं होरा या फलित स्कन्ध का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई से संहिता स्कन्ध का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

संहिता ज्योतिष किसे कहते है? उसके अन्तर्गत कौन-कौन से विषयों का समावेश है? उसका स्वरूप एवं महत्व क्या है ? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे।

आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

५.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वास्तु किसे कहते हैं
- समझा सकेंगे कि वास्तुशास्त्र का इतिहास क्या है।
- वास्तुशास्त्र के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- वास्तुशास्त्र के प्रवर्तकों का नाम जान लेंगे।
- वास्तुशास्त्र की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

५.३. नक्षत्र गत पदार्थ

संहिता ज्योतिष में नक्षत्रों के अन्तर्गत पदार्थों का विश्लेषण आचार्य के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। वस्तुत: नक्षत्रों में कृत्तिका से आरम्भ कर अन्य शेष २८ नक्षत्र गत में उसके क्या- क्या पदार्थ हैं। इसका उल्लेख क्रमश: यहाँ किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त वराहमिहिर द्वारा प्रतिपादित वृहत्संहिता नामक ग्रन्थ में जातिगत पदार्थ विश्लेषण एवं अन्य सम्बन्धित विशेष विचारों का भी उल्लेख यहाँ आप सभी के ज्ञानार्थ वर्णित है।

५.४ कृत्तिकादि नक्षत्र गत पदार्थ विश्लेषण

सर्वप्रथम **कृत्तिका नक्षत्र** का उल्लेख करते हुए आचार्य कहते है -

आग्नेये सितकुसुमाहिताग्निमन्त्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञाः।
आकरिकनापितद्विजघटकारपुरोहिताब्दज्ञाः।।

श्वेत पुष्प, अग्निहोत्री, मन्त्र जानने वाले, यज्ञशास्त्र को जानने वाले, वैयाकरण, खान, आकरिक, हजाम, ब्राहमण, कुम्भार, पुरोहित, ज्योतिष- ये सब कृत्तिका नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

रोहिणी नक्षत्र के पदार्थ -

रोहिण्यां सुव्रतपण्यभूपधनियोगयुक्तशाकटिकाः।
गोवृषजलचरकर्षकशिलोच्चयैश्वर्यसम्पन्नाः।।

सुव्रत, पण्यवृत्ती, राजा, योगी, गाड़ी से आजीविका चलाने वाले, गौ, बैल, जल में रहने वाले जन्तु, किसान, पर्वत, ऐश्वर्ययुत-ये सब पदार्थ रोहिणी नक्षत्रगत हैं।

मृगशिरा नक्षत्र गत पदार्थ -

मृगशिरसि सुरभिवस्त्राब्जकुसुमफलरत्नवनचनविहङ्गाःग।
मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुका लेखहाराश्च।।

सुगन्तिधयुक्त द्रव्य, वस्त्र, जलोत्पन्न द्रव्य, पुष्प, फल, रस, वनवासी, पक्षी, मृग, सोमरस का पान करने वाले, विद्या जानने वाले, कामी, पत्रवाहक-ये सब पदार्थ मृगशिर नक्षत्रगत हैं।

आर्द्रा नक्षत्र के पदार्थ -

रौद्रे वधबन्धानृतपरदारस्तेयशाठयभेदरताः।
तुषधान्यतीक्ष्णमन्त्राभिचारवेतालकर्मज्ञाः।।

वध करने वाले, प्राणियों को बाँधने वाले, असत्य भाषण करने वाले, पर-स्त्रीगामी, चोर, शठ (धूर्त), भेद कराने वाले, भूसी वाले धान्य, क्रूर, मन्त्र को जानने वाले अभिचारज्ञ (वशीकरण आदि कर्मों को जानने वाले), वेताल के उत्थापन का कर्म जानने वाले-ये सब आर्द्रा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।4।।

पुनर्वसु नक्षत्र गत पदार्थ -

आदित्ये सत्यौदार्यशौचकुलरूपधीयशोऽर्थयुताः।
उत्तमधान्यं वणिजः सेवाभिरताः सशिल्पिजनाः।।

सत्य भाषण करने वाले, दानी, शौचयुत (शुद्ध), दूसरे के धनादि का लोभ नहीं करने वाले, कुलीन, सुन्दर, बुद्धिमान, यशस्वी, धनी, उत्तम धान्य, वणिक्, सेवक, शिल्पी-ये सब पुनर्वसु नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

पुष्य नक्षत्र के पदार्थ -

पुष्ये यवगोधूमाः शालीक्षुरवनानि मन्त्रिणो भूपाः।
सलिलोपजीविनः साधवश्च यज्ञेष्टिसक्ताश्च।।

यव, गेहूँ, धान्य, ईख (गन्ना), वन, मन्त्री, राजा, जल से आजीविका चलाने वाले (धीवर आदि), सज्जन, याज्ञिक (पुत्रकाम्य आदि यज्ञ कराने वाले)-ये सब पदार्थ पुष्य नक्षत्रगत हैं।

आश्लेषा -

अहिदेवे कृत्रिमकन्दमूलफलकीटपन्नगविषाणि।
परधनहरणाभिरतास्तुषधान्यं सर्वभिषजश्च।।

कृत्रिम द्रव्य, कन्द, मूल, फल, कीट, सर्प, विष, दूसरे के धन का हरण करने वाले, भूसी वाले धान्य, सभी प्रकार की औषधियों का प्रयोग करने वाले-ये सब आश्लेषा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

मघा-

पित्र्ये धनधान्याढयाः कोष्ठागाराणि पर्वताश्रयिणः।
पितृभक्तवणिक्शूराः क्रव्यादाः स्त्रीद्विषो मनुजाः।।

धनी, धान्यागार, पर्वत पर रहने वाले, पिता-माता के सेवक, व्यापारी, शूर, मांसाहारी स्त्रीद्वेषी-ये सब मघा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

पूर्वाफाल्गुनी-

प्राक्फल्गुनीषु नटयुवतिसुभगगान्धर्वशिल्पिपण्यानि।
कर्पासलवणमाक्षिकतैलानि कुमारकाश्चापि।।

नाचने वाले, स्त्रियाँ, सबों के प्रिय, गानविद्या को जानने वाले, शिल्पी, विक्रय या क्रय-द्रव्य, कार्पास (रुई), नमक, शहद, तेल, बालक-ये सभी पदार्थ पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रगत हैं।

उत्तराफाल्गुनी-

आर्यम्णे मार्दवशौचविनयपाखण्डिदानशास्त्ररताः।
शोभनधान्यमहाधनकर्मानुरताः समनुजेन्द्राः।।

कोमल हृदय वाले, शुद्ध (दूसरे के धनादि को नहीं चाहने वाले), नीतिज्ञ, पाखण्डी (वेदनिन्दक), दानी, शास्त्रों में निरत, सुन्दर धान्य, अतिशय धनी, कर्म में निरत राजा-ये सब उत्तरफल्गुनी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

हस्त-

हस्ते तस्करकुंजररथिकमहामात्रशिल्पिपण्यानि।
तुषधान्यं श्रुतयुक्ता वणिजस्तेजोयुताश्चात्र।।

चोर, हाथी, रथ पर चलने वाले, हस्तिसाधनपति, शिल्पी, क्रय-विक्रय द्रव्य, भूसी वाले धान्य, सुनने वाले, वणिक्, तेजस्वी-ये सब हस्त नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

चित्रायामाह-

त्वाष्टे भूषणमणिरागलेख्यगान्धर्वगन्धयुक्तिज्ञाः।
गणितपटुतन्तुवायाः शालाक्या राजधान्यानि।।

अलंकार को जानने वाले, मणि के लक्षण को जानने वाले, रागज्ञ (रंगरेज), लेखक, गान विद्या को जानने वाले, सुगन्धियुत द्रव्य बनाने वाले, गणितज्ञ, जुलाहा, नेत्ररोग चिकित्सक, राजा के उपयोग धान्य-ये सब चित्रा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

स्वाती-

स्वातौ खगमृगतुरगा वणिजो धान्यानि वातबहुलानि।
अस्थिरसौहृदलघुसत्त्वतापसाः पण्यकुशलाश्च।।

पक्षी, मृग, अश्व, खरीदने-बेचने वाले, धान्य, छोटे जन्तु, तपस्वी, क्रय-विक्रय में कुशल-ये सब स्वाती नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

विशाखायामाह-

इन्द्राग्निदैवते रक्तपुष्पफलशाखिनः सतिलमुदाः।
कर्पासमाषचणकाः पुरन्दरहुताशभक्ताश्च।।

रक्त पुष्प, रक्त फल, वृक्ष, तिल, मूंग, कपास (रुई), चना, इन्द्र के भक्त, अग्निभक्त-ये सब विशाखा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

अनुराधा-

मैत्रे शौर्यसमेता गणनायकसाधुगोष्ठियानरताः।
ये साधवश्च लोके सर्वं च शरत्समुत्पन्नम्।।

बली, समूहों में प्रधान, साधुओं के भक्त, संघ में बैठने वाले, वाहन से चलने वाले, जनपदों के साधु, शारदीय धान्य आदि-ये सब अनुराधा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

ज्येष्ठा-

पौरेन्दरेऽतिशूराः कुलवित्तयशोऽन्विताः परस्वहृतः।
विजिगीषवो नरेन्द्राः सेनानां चापि नेतारः।।

अति शूर, कुलीन, धनी, यशस्वी, दूसरे के धन का अपहरण करने वाले, दूसरे को जीतने की इच्छा करने वाले राजा, सेनापति-ये सब ज्येष्ठा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

मूल -

मूले भेषजभिषजो गणमुख्याः कुसुममूलफलवार्ताः।

बीजान्यतिधनयुक्ताः फलमूलैर्ये च वर्तन्ते।।

औषध, वैद्य, समूह में प्रधान, पुष्प, मूल और फल से आजीविका चलाने वाले, नव प्रकार के बीज, अतिधनी, फलाहारी, कन्दाहारी-ये सब मूल नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

पूर्वाषाढा-

आप्ये मृदवो जलमार्गगामिनः सत्यशौचधनयुक्ताः।
सेतुकरवारिजीवकफलकुसुमान्यम्बुजातानि।।

कोमल हृदय वाले, जल-मार्ग से चलने वाले (धीवर, जल में रहने वाले प्राणी आदि), सत्य भाषण करने वाले, दूसरे के धन आदि को नहीं चाहने वाले, धनी, पुल बनाने वाले, जल से आजीविका चलाने वाले, जल से उत्पन्न फल और पुष्प-ये सब पूर्वाषाढा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

उत्तराषाढा-

विश्वेश्वरे महामात्रमल्लकरितुरगदेवतासक्ताः।
स्थावरयोधा भोगान्विताश्च ये तेजसा युक्ताः।

महामात्र (मुख्य मन्त्री = 'महामात्राः प्रधानानि' इत्यमरः), मल्ल, बाहुयुद्ध में कुशल, हाथी, घोड़ा, देवताओं के भक्त, स्थावर (वृक्ष आदि), युद्ध में कुशल, भोगी, तेजस्वी-ये सब उत्तराषाढा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

श्रवण-

श्रवणे मायापटवो नित्योद्युक्ताश्च कर्मसु समर्थाः।
उत्साहिनः सधर्मा भागवताः सत्यवचनाश्च।।

मायापटु (मायावी, प्रपंची), सदा सब कामों को करने में उद्यत, उत्साही, धर्मी, भगवान् के भक्त, सत्य भाषण करने वाले-ये सब श्रवणनक्षत्रगत पदार्थ हैं।

धनिष्ठा-

वसुभे मानोन्मुक्ताः क्लीबाचलसौहृदाः स्त्रियां द्वेष्याः।
दानाभिरता बहुवित्तसंयुताः शमपराश्च नराः।।

अहंकाररहित, नपुंसक, अस्थिर मित्रता करने वाले, स्त्रीद्वेषी, दानी, बहुत धनी, जितेन्द्रिय-ये सब धनिष्ठा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

शतभिष-

वरुणेशे पाशिंकमत्स्यबन्धजलजानि जलचराजीवाः
सौकरिकरजकशौण्डिकशाकुनिकाश्चापि वर्गेऽस्मिन्।।

पाशिक (जाल से प्राणियों को मारने वाले), मछली मारने वाले, जल में उत्पन्न होने वालेन सभी द्रव्य, जलचर जन्तुओं से आजीविका चलाने वाले, सूअर को रखने वाले (डोम आदि), धोबी, मद्य बेचने वाले (कलवार आदि), पक्षियों को मारने वाले-ये सब शतभिषा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

पूर्वभाद्रपदा-

आजे तस्करपशुपालहिंस्त्रकीनाशनीचशठचेष्टाः।
धर्मव्रतैर्विरहिता नियुद्धकुशलाश्च ये मनुजाः।।

चोर, पशुपालक, क्रूर, कीनाश (क्षुद्र = 'कृतान्ते पंसि कीनाशः क्षुद्रकर्पकयोरि... इत्यमरः), नीच जन, शठ (परोपकार से विमुख), विधर्मी, व्रतों से रहित, बाहु-.... को जानने वाले-ये सब पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

उत्तराभाद्रपदा-

आहिर्बुध्न्ये विप्राः क्रतुदानतपोयुता महाविभवाः।
आश्रमिणः पाखण्ड नरेश्वराः सारधान्यं च।।

ब्राहमण, यज्ञ करने वाले, दानी, तपस्वी, अति धनी, आश्रमी (चतुर्थाश्रम में र... वाले), पाखण्डी (वेदनिन्दक), राजा, उत्तम धान्य-ये सब उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र... पदार्थ हैं।

रेवती नक्षत्र गत पदार्थ -

पौष्णे सलिलजफलकुसुमलवणमणिशंखमौक्तिकाब्जानि।
सुरभिकुसुमानि गन्धा वणिजो नौकर्णधाराश्च।।

जल से उत्पन्न होने वाले द्रव्य, फल और फूल, नमक, रत्न, शंख, मोती, कमर आदि सुगन्धयुक्त फूल, सुगन्धियुत द्रव्य, खरीदने-बेचने वाले, नावक-ये सभी रेवती नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

अश्विनी-

अश्विन्यामश्वहराः सेनापतिवैद्यसेवकास्तुरगाः।
तुरगारोहा वणिजा रूपोपेतास्तुरगरक्षाः।

घोड़े को चुराने वाले, सेनापति, वैद्य, सेवक, घोड़ा, घोड़े पर चढ़ने वाले, खरीदने-बेचने वाले, सुन्दर, अश्वरक्षक-ये सब अश्विनी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

भरणी नक्षत्र गत पदार्थ -

याम्येऽसृक्पिशितभुजः क्रूरा वधबन्धताडनासक्ताः।
तुषधान्यं नीचकुलोöवा विहीनाश्च सत्त्वेन।।

रक्तमिश्रित मांस खाने वाले, क्रूर, वध, बन्धन और ताडन करने वाले, भूसी वाले धान्य,

नीच कुल में उत्पन्न, उदारता आदि गुणों से रहित-ये सब भरणी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

अधुना जातिनक्षत्राण्याह-

पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि।
सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम्।।
आदित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि वणिग्जनानां प्रवदन्ति तानि।
मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाः।।
सौम्यैन्द्रचित्रावसुदैवतानि सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि।
सार्पं विशाखा श्रवणो भरण्यश्चण्डालजातेरभिनिर्दिशन्ति।।

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और कृत्तिका ब्राहमणों के; उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और पुष्य क्षत्रियों के; रेवती, अनुराधा, मघा और रोहिणी वैश्योंर के; पुनर्वसु, हस्त, अभिजित् और अश्विनी क्रय-विक्रय करने वालों के; मूल, आर्द्रा, स्वाती और शतभिषा क्रूर मनुष्यों के; मृगशिरा, ज्येष्ठा, चित्रा और धनिष्ठा सेवकों के तथा आश्लेषा, विशाखा, श्रवणा और भरणी नक्षत्र चाण्डालों के स्वामी होते हैं।

अथ क्रूरग्रहप्रयोजनमाह-

रविरविसुतभोगमागतं क्षितिसुतभेदनवक्रदूषितम्।
ग्रहणगतमथोल्कया हतं नियतमुषाकरपीडितं च यत्।।
तदुपहतमिति प्रचक्षते प्रकृतिविपर्ययायातमेव वा।
निगदितपरिवर्गदूषणं कथितविपर्ययगं समृद्धये।।

रवि और शनि से मुक्त, मंगल के भेदन या वक्र गमन से दूषित, ग्रहणकालिक, उल्का से हत, चन्द्रकिरण से पीड़ित (चन्द्रमा जिस नक्षत्र की योगतारा को आच्छादित या उसके दक्षिण भाग में होकर गमरा करे) या स्वाभाविक उत्तम गुण से रहित नक्षत्र को मुनि लोग पीड़ित कहते हैं। इस तरह पीड़ित नक्षत्र पूर्वोक्त अपने वर्ग का नाश और उक्त से भिन्न लक्षणयुत हो तो उनकी वृद्धि करता है।

इस प्रकार कृत्तिकादि २८ नक्षत्रों तथा जाति गत पदार्थ विश्लेषण आचार्य वराहमिहिर के द्वारा किया गया है।

बोध प्रश्न -

1. निम्न में कृत्तिका नक्षत्र के पदार्थ है।
   क. ज्योतिष ख. राजा ग. योगी घ. गौ

2. मघा नक्षत्र के अन्तर्गत पदार्थ है।
   क. कन्द-मूल ख. धनी ग. कीट घ. सर्प
3. स्वाती नक्षत्र के पदार्थ है।
   क. नेत्ररोगी चिकित्सक ख. मृग ग. संगीत घ. कन्दमूल
4. आर्द्रा नक्षत्र के पदार्थ है।
   क. वध करने वाले ख. वनवासी ग. संगीत घ. कन्दमूल
5. उ0षा0 नक्षत्र के पदार्थ है।
   क. हाथी ख. घोड़ा ग. मोती घ. सोना

५.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि श्वेत पुष्प, अग्निहोत्री, मन्त्र जानने वाले, यज्ञशास्त्र को जानने वाले, वैयाकरण, खान, आकरिक, हजाम, ब्राहमण, कुम्भार, पुरोहित, ज्योतिष-ये सब कृत्तिका नक्षत्रगत पदार्थ हैं। सुव्रत, पण्यवृत्ती, राजा, योगी, गाड़ी से आजीविका चलाने वाले, गौ, बैल, जल में रहने वाले जन्तु, किसान, पर्वत, ऐश्वर्ययुत-ये सब पदार्थ रोहिणी नक्षत्रगत हैं।सुगन्तिधयुक्त द्रव्य, वस्त्र, जलोत्पन्न द्रव्य, पुष्प, फल, रस, वनवासी, पक्षी, मृग, सोमरस का पान करने वाले, विद्या जानने वाले, कामी, पत्रवाहक-ये सब पदार्थ मृगशिर नक्षत्रगत हैं। वध करने वाले, प्राणियों को बाँधने वाले, असत्य भाषण करने वाले, पर-स्त्रीगामी, चोर, शठ (धूर्त), भेद कराने वाले, भूसी वाले धान्य, क्रूर, मन्त्र को जानने वाले अभिचारज्ञ (वशीकरण आदि कर्मों को जानने वाले), वेताल के उत्थापन का कर्म जानने वाले-ये सब आर्द्रा नक्षत्रगत पदार्थ हैं। सत्य भाषण करने वाले, दानी, शौचयुत (शुद्ध), दूसरे के धनादि का लोभ नहीं करने वाले, कुलीन, सुन्दर, बुद्धिमान, यशस्वी, धनी, उत्तम धान्य, वणिक्, सेवक, शिल्पी-ये सब पुनर्वसु नक्षत्रगत पदार्थ हैं। यव, गेहूँ, धान्य, ईख (गन्ना), वन, मन्त्री, राजा, जल से आजीविका चलाने वाले (धीवर आदि), सज्जन, याज्ञिक (पुत्रकाम्य आदि यज्ञ कराने वाले)-ये सब पदार्थ पुष्य नक्षत्रगत हैं। कृत्रिम द्रव्य, कन्द, मूल, फल, कीट, सर्प, विष, दूसरे के धन का हरण करने वाले, भूसी वाले धान्य, सभी प्रकार की औषधियों का प्रयोग करने वाले-ये सब आश्लेषा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

धनी, धान्यागार, पर्वत पर रहने वाले, पिता-माता के सेवक, व्यापारी, शूर, मांसाहारी स्त्रीद्वेषी-ये सब मघा नक्षत्रगत पदार्थ हैं। इसी प्रकार अन्य सभी नक्षत्रों के पदार्थ कहे गये हैं।

५.६ पारिभाषिक शब्दावली

दिक् – दिशा

सिद्धान्त - सिद्ध: अन्ते यस्य स: सिद्धान्त:।

गणित – गण्यते संख्यायते तद् गणितम्।

शंकु – १२ अंगुलात्मक यन्त्र

दिशा – प्राच्यादि १० दिशायें होती है।

विदिशा – चार कोण को विदिशा के रूप में जानते है।।

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्।

५.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. ख
3. ख
4. क
5. क

५.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर

2. नारदसंहिता – टीका – पं. रामजन्म मिश्र

५.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वृहत्संहिता

2. वशिष्ठ संहिता

3. नारद संहिता

५.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. वर्षफल से क्या तात्पर्य है।

2. वृहत्संहिता के अनुसार अश्विनी से लेकर आर्द्रा पर्यन्त नक्षत्र गत पदार्थों का विश्लेषण कीजिये।

3. कृत्तिकादि २८ नक्षत्रों के पदार्थों का सम्यक् उल्लेख कीजिये।

4. जातिगत पदार्थ क्या है। पदार्थो में विशेष का वर्णन कीजिये।

5. नक्षत्र गत पदार्थो का महत्व प्रतिपादित कीजिये।

खण्ड - 2

वृष्टि एवं आपदा

इकाई - १ वृष्टि के कारक

इकाई की संरचना

१.१. प्रस्तावना

१.२. उद्देश्य

१.३. वृष्टि कारक - परिचय

१.३.१. कुत्ता, गाय, मधुमक्खी, चींटी के शकुनों पर से सद्यः वृष्टि- विचार

१.३.२ मकरन्दप्रकाश ग्रन्थानुसार शक् से वृष्टि ज्ञान –

१.३.३ पंचताराग्रह योगों से वृष्टि विचार

१.३.४ वर्षा विज्ञान

१.४. वृष्टि के आधार

१.४.१. वृष्टि ज्ञान के शास्त्रीय आधार

१.४.२ प्राचीन भारतीय वृष्टिविज्ञान के आधारभूत सिद्धान्त

१.५. सारांश

१.६. पारिभाषिक शब्दावली

१.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

१.९. सहायक पाठ्य सामग्री

१.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

१.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय सेमेस्टर (MAJY-604) के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – वृष्टि के कारक। इससे पूर्व आप सभी ने ज्योतिष शास्त्र के संहिता स्कन्ध से जुड़े अनेक विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप उसी क्रम में वृष्टि के कारक से सम्बन्धित इकाई का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

वृष्टि किसे कहते है? उसके अन्तर्गत कौन-कौन से विषयों का समावेश है? उसके कारक कौन-कौन से है ? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे। आइए वृष्टि विज्ञान से जुड़े विभिन्न विषयों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

१.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वृष्टि किसे कहते हैं
- समझा सकेंगे कि वृष्टि का उद्भव कैसे होता है।
- वृष्टि के स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- वृष्टि के अनेक भेदों से परिचित हो जायेंगे।
- वृष्टि के विभिन्न पहलुओं से अवगत हो जायेंगे।

१.३. वृष्टि कारक : परिचय

'अन्नं ये प्राणाः' कलियुग में मानव का प्राण अन्न में ही है और अन्न की उत्पत्ति या नाश वृष्टि या वर्षा के अधीन है। वृष्टि सम्पूर्ण चराचर प्राणियों के लिए उनके जीवन का मूलाधार है। वृष्टि से ही जल की आपूर्ति होती है। और जल का सम्पूर्ण सृष्टि के लिए क्या महत्व है? इससे आप सभी परिचित ही होंगे। अत: वृष्टि-सम्बन्धी योगों एवं कारकों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है। इसके अध्ययन से आपके द्वारा वृष्टि-अनावृष्टि का ज्ञान सरलता एवं सफलतापूर्वक किया जा सकेगा।
वृष्टि विज्ञान से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को क्रमश: आपके ज्ञानार्थ यहाँ लिखा जा रहा है-

1. ग्रहों के उदय, अस्त, राश्यन्तर और क्रान्ति-परिवर्तन, युति तथा अमावस्या, पूर्णिमा को प्रायः वर्षा होती है। ''**ग्रहाणामुदये वाऽस्ते राश्यन्तर मतेऽयने। संयोगे वाऽपि पक्षान्ते प्रायो वृष्टिः प्रजायते।**''

2. मंगल के राशि-चार के समय चन्द्रमा जलचर राशि (कर्क, मकर, मीन) में हो तो वर्षा ऋतु में मेघ पृथ्वी पर बहुत शीघ्र जल देता है।

3. गुरु के राशि-संचार से, बुध के संचार में, शनि के त्रिधा संचार यानी वक्री, मार्गी, राश्यन्तर अथवा उदय, अस्त, राश्यन्तर होने पर; शुक्र के उदय, अस्त होने पर मेघ शीघ्र ही चारों तरफ जल बरसाता है।

मतान्तर- उदयास्तगतः शुक्री बुधश्च वृष्टिकारकः चलत्यंगर के वृष्टिस्त्रिधा वृष्टिः शनेश्चरे।। बुध शुक्र उदित अस्त होते हुए, मंगल राशि-संक्रमण करता हुआ और और शनिश्चर उक्त तीनों से प्रकार से वृष्टिकारक होता है। 'चलत्य..रके वृष्टिरुदये च बृहस्पतौ। शुक्रास्तसमये वृष्टिस्त्रिघावृष्टिः शनेश्चरे।।' मंगल राशि-संक्रमण करने पर, गुरु उदय होने पर, शुक्र अस्त होकर, शनिश्चर उक्त तीनों प्रकार से वर्षा करते हैं।

4. वारिपूर्णा महीं कुत्वा पश्चात्संचरते गुरुः। शुक्ते वाऽस्तमिते मन्दे त्रिविघोऽपि प्रजायते।। गुरु राशि-संचार के बदा तथा शुक्र, शनि अस्त से पूर्व, इस प्रकार तीनों पृथ्वी पर वर्षा करते हैं।

5. शुक्रस्यास्तमये वृष्टिरिज्ये चोदयमागते। संच-रत्यवनीसूनो वृष्टिमन्दे त्रिधामता।। शुक्र के अस्त में सामान्य वर्षा, गुरु के उदय में मध्यम, मंगल शनि के संचार में उत्तम, ऐसे तीन भांति से वर्षा होवे।

6. प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागम मण्डलसंक्रमे च। पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽके नियमेन चाद्र्राम्।

किसी ग्रह के उदय या अस्त होने, एक मण्डल से दूसरे मण्डल में जाने, दो ग्रहों का समागम (अशात्मक युति) होने, पूर्णिमा एवं अमावस्या को, सूर्य की अयन-संक्रान्ति या विशेष कर आद्र्रा पर जाने के समय प्रायः वर्षा हुआ करती है।

7. कर ग्रह अतिचारी हो तो थोड़ी और शुभग्रह वकी हो तो बहुत वर्षा होवे।

पाठभेदः- उदये च गुरौ वृष्टिरस्ते वृष्टिभूगोः सुत्ते।

8. यदि बुध वक्री होकर शुक्र को छोड़ पीछे (उल्टा) चला जाय तो पांच-सात दिन तक वर्षा हो।

9. अस्त या उदय होते हुए किसी भी ग्रह को बृहस्पति पूर्ण या त्रिपाद (पौन) दृष्टि से देखें तो अवश्य वर्षा हो।

नोट- उदयास्तोन्मुख ग्रह से बृहस्पति 5-7-9वें होने पर पूर्ण दृष्टि तथा 10, 6ठें होने पर त्रिपाद (पौन) दृष्टि से देखेगा।

10. सूर्याग्रे च यदा शुकस्तदा वृष्टिः सुशोभना। अर्थात् सूर्य से आगे शुक्र और पीछे गुरु हो तो पृथ्वी जलमयी हो।

11. बुध शुक्र के उदय और अस्त होने पर, चंद्रमा के जल-राशि में स्थित होने पर एवं पक्षान्त (अमावस्या, पूर्णिमा) और सक्रान्ति-समय में प्रायः वृष्टि हुआ करती है।

12. 'उदयास्तमये मार्गे वक्रयुक्ते च संक्रमे। जलराशि-गताः खेटा महावृष्टिप्रदाः सदा।' ग्रहों के उदय, अस्त मार्गी, वक्री और राशि-संक्रमण, विशेषतः जलराशि में संक्रमण होने पर प्रायः विशेष वर्षा होती है।

नोट-कर्क, मकर और मीन राशियाँ पूर्ण जलप्रद हैं। वृष, धनु और कुम्भ अर्ध जलप्रद हैं। तुला और वृश्चिक सामान्य जलद हैं, शेष राशियाँ जलरहित हैं।

13. शुक्र के नक्षत्र-प्रवेश के समय चंद्रमा उससे 4, 7, 8वीं राशि पर हो अथवा जलराशि का होकर शुक्र से त्रिकोण या सप्तम (5, 7 या 9वें) होन तो अच्छी वर्षा होती है।

14. यदि शनि या मंगल से 5, 7 या 9वें स्थान में चंद्रमा जल-राशि अथवा शुक्रदृष्ट-राशि (यानी शुक्र से 4, 7, 8वीं राशि) पर आये तो अच्छी वर्षा करता है।

15. शनि से त्रिकोण या केन्द्रानुवर्ती (1-4-5-7-9 या 10वें स्थान में) सौम्य ग्रह जल-राशि का अथवा शुक्र दृष्ट हो तो अच्छी वर्षा करता है।

16. सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में आने पर चन्द्रमा, मंगल और गुरु यदि सप्त-नाड़ी-चक्र की एक नाड़ी में पड़ जायें तो पृथ्वी जलप्लावित हो। वर्षा-काल में चंद्र, मंगल और गुरु के एक राशि में होने पर भी मेघ अच्छी वर्षा करते हैं। गुरु मंगल का राशि-नक्षत्र-योग (मतान्तर से प्रतियोग भी) चातुर्मास में वृष्टि को रोकता है; किन्तु वसन्तादि अन्य ऋतुओं में यही योग (प्रति योग) वृष्टि करता है। इसी प्रकार वर्षा ऋतु में बुध, बृहस्हति और शुक्र इन तीनों में-से किन्हीं दो की परस्पर युति हो और तीसरे की उन पर दृष्टि हो तो उत्तम वर्षा; दृष्टि के अभाव में केवल युति से सामान्य वृष्टि हो सकती है। उक्त योग करने वाले ग्रहों की राशि में सूर्य न होना चाहिए। जिस समय सूर्य ग्रहों को लांघकर आगे हो जाय और उसके आगे तीन राशि तक काठ ग्रह नहीं हो अथवा सूर्य को ही ग्रह लाँघकर आगे हो जाय तथा सूर्य से पीछे की तीन राशियों में कोई ग्रह न हो तो इन दोनों स्थितिया में वृष्टि होती है।

वर्षा-काल में आर्द्रा से स्वाती तक सूर्य के रहते, यदि चंद्रमा शुक्र से सप्तम स्थान में, अथवा शनि से 5-7-9वें गृह में हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो उस समय अवश्य वर्षा होती है। वर्षा-काल में भी बुध और शुक्र के मध्य में सूर्य का होना, मंगल का सूर्य से आगे होना और चंद्र शुक्र का पापाकान्त होना वृष्टि-अवरोध योग हैं।

१.३.१ कुत्ता, गाय, मधुमक्खी, चींटी के शकुनों पर से सद्यः वृष्टि- विचार -

1 वर्षा-काल में अर्थात् मृगशिरा नक्षत्र से स्वाती नक्षत्र तक के 11 नक्षत्रों में सूर्य रहे, तब यदि कुत्ता घास या भूसा के ढेर पर चढ़कर वहाँ से अथवा देवालय के ऊपर चढ़कर वहाँ से, अथवा मकाल के मुख्य स्थना पर चढ़कर वहाँ से ऊपर मुँह करके रोवे तो जितने जोर से रोवे उतने जोर से वृष्टि होगी। अन्य नक्षत्र स्थित सूर्य में अन्यान्य अशुभ फल, जैसे मृत्यु अधिक होना, आग लगना, रोगों का आक्रमण आदि होता है; किन्तु वर्षा-काल में अशुभ फल न होकर वृष्टि होती है।

2. उपरोक्त वर्षा-काल में ही वर्षा एक बार होकर यदि बन्द हो गयी हो, तब यदि कुत्ते पानी में गोल चक्कर लगावें, पानी को जोर से हिलावें या घूम-घूमकर पानी पीवें तो भी 12 दिन के भीतर वर्षा होती है।

3. चलती हुई गाय को निष्कारण कुत्ता रोक दे, किसी तरह आगे जाने ही न दे तो उसी दिन एक प्रहर के अन्दर भारी वृष्टि हो; इसी प्रकार मधुमक्खियाँ भी झुण्ड मेंर चलती हुई यदि गाय को निष्कारण ही रोकने में सफल हुई तो भी उस दिन तक प्रहर के भीतर, जैसा छोटा बड़ा उनका झुण्ड होगा, वैसी न्यूनाधिक वर्षा होगी।

4. वर्षा-काल में चीटियाँ यदि अण्डा लेकर ऊपर की तरफ जाती हों तो वर्षा होगी; परन्तु नीचे की तरफ या पानी में अण्डा ले जाती हों तो बरसता हुआ पानी रुक जायेगा।

१.३.२ मकरन्दप्रकाश ग्रन्थानुसार शक् से वृष्टि ज्ञान –

त्रिघ्नेशके दन्तयुते विभक्ते वदैश्च शेषे विषमेऽतिवृष्टिः।
स्वल्पा समे संविहिता मुनीन्द्रैर्गर्ग्यादिभिः स्वीयतपोभिरुग्रैः।।

त्रिगुणित शकाब्द में ३२ जोड़कर उसमें ४ का भाग देने पर यदि विषम शेष बचे तो अतिवृष्टि और सम शेष में स्वल्पवृष्टि होती है, ऐसा समझना चाहिए। गर्ग आदि मुनियों ने अपनी तपोबल के आधार पर वृष्टि विचार का प्रतिपादन किया है।

१.३.३ पंच ताराग्रह-योगों से वृष्टि-विचार

1. वर्षा-काल में बुध तथा शुक्र 30 अश से कम अन्तर में आयेंगे तो वृष्टि का आरम्भ होगा; लेकिन उन दोनों के बीच में सूर्य आयेगा तो वर्षा बन्द हो जायेगी।

2. शनि से 5-7 या 9वें चन्द्रमा हो, उसको गुरु या शुक्र या दोनों देखें तो जब तक यह योग रहेगा, तब तक बराबर वृष्टि होती रहेगी। भौम, रवि यदि देखोगे तो वर्षा रोक देंगे। एक शुभ और एक पाप मिश्रित दृष्टि का फल बलाबल देखकर जानना चाहिये। शुभग्रह के दृप्टयंश में रहेगा तब तक वर्षा होगी, पापग्रह के दृष्टयंश में रहेगा तब तक खुला रहेगा। भौम-दृष्टि में कड़ी धूप हो जायेगी। बुध

की दृष्टि चन्द्रमा पर होगी तब बादल, धूप, वृष्टि का निणय उसके साथ रहने वाले ग्रहों के आधार पर होगा।

१.३.४ वर्षा-विज्ञान

भारतीय ज्योतिष शास्त्र की ऋतु-विज्ञान शाखा में भावी वृष्टि, अल्पवृष्टि, अतिवृष्टि, आँधी, तूफान, दुर्दिन आदि के परिज्ञान के लिए अनेकानेक विधियाँ वर्णित हैं। उनमें से कुछ को हमारे पंचाकृकार तथा ज्योतिषीगण बढ़े भरोसे के साथ उपयोग करते आ रहे हैं। उनकी संक्षिप्त प्रारम्भिक जानकारी हम पाठकों को यहाँ कराते हैं

सप्तनाड़ी चक्र - आकाशीय नक्षत्र-मण्डल के 28 नक्षत्र (अभिजित सहित) को प्राचीन आचार्यों ने 7 नाड़ियों में विभाजित किया है उन नाड़ियों के नाम, उनके स्वामी, ग्रह, दिशा, हर नाड़ी के अन्तर्गत नक्षत्रों के नाम आदि का विवरण बगल के चक्र से ज्ञात कीजिए।

दो या अधिक ग्रह जब किसी नाड़ी में एकत्र होते हैं तो उनसे उक्त नाड़ी का वेध होता है। एक नाड़ी के नक्षत्रों में से चाहें जिन पर ग्रह आवें, उनका योग माना जाता है, अस्तु। यदि दो या अधिक पापग्रह अथवा दो या अधिक शुभग्रह चण्डा नाड़ी में आवें तो बहुत वायु (आँधी), वायु-नाड़ी में विशेष वायु-वेग और अग्नि-नाड़ी में महादाह पृथ्वी पर चारों ओर करते हैं। इसके अतिरिक्त नाम के अनुरूप यानी सौम्या में शुभ, नीरा में जल, जला में जल इत्यादि फल ग्रह-योग प्रदान करते हैं। सौम्या नाड़ी में यदि दो आदि ग्रह हों तो मध्यम फल देते हैं। नीरा नाड़ी में हों तो मेघवाहक (मेधाडम्बर करने वाले होते हैं। चन्द्रमा यदि जला नाड़ी में हो तो वृष्टिकारक होता है। चन्द्रमा की नाड़ी (अमृता) में एक भी कोई ग्रह हो तो वर्षा-काल में वृष्टिकारक ही होता है। ग्रह अपनी-अपनी नाड़ी में ओने से अपना-अपना फल देता है, अन्य नाड़ियों में नाड़ी के समान फल देता है, किन्तु मंगल प्रत्येक नाड़ी में उस नाड़ी के समान ही फल देता है।

विशेष यह जानना चाहिए कि कोई भी एक ग्रह सिर्फ अपनी नाड़ी में फलकारक होता है। जब दो से अधिक ग्रह किसी नाड़ी में हों तभी उसका फल देते है; परन्तु मंगल अकेला भी हर-एक नाड़ी में उस नाड़ी के अनुरूप फल देता है।

चन्द्रमा जिस नाड़ी में हो, उसी में यदि और ग्रह मिश्र ग्रहों (शुभ और पापों) से भिन्न (वेधित) हों तो उस दिन उत्तम वृष्टि कहनी चाहिए। एक-एक नाड़ी में चार-चार नक्षत्र होते हैं, इसलिए नाड़ी के किसी एक या अलग-अलग नक्षत्रों में भी ग्रहों के रहने से 'वेध' माना गया है।

किसी नाड़ी के चारों नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र पर चन्द्रमा उपस्थित हो तथा उसी नक्षत्र पर क्रूर और सौम्य ग्रह हों तो उसी दिन वर्षा होती है। एक नक्षत्र पर क्रूर और सौम्य ग्रह स्थित हों तो

जितने समय तक उन ग्रहों के साथ चन्द्रमा का अशात्मक योग रहेगा यानी चन्द्रमा तथा ग्रहों के अंश तुल्य रहेंगे, तब तक महावृष्टि होगी। जिस नाड़ी में केवल सौम्य या केवल पाप ग्रह हों, उस नाड़ी में चन्द्रमा के संचार से अत्यल्प वर्षा होती हैं या दुर्दिन होता एवं आकाश बादलों से आच्छादित रहता है। जिस नाड़ी में उसका स्वामी ग्रह स्थित हो, वह नाड़ी अक्षीण चंद्र से युक्त या दृष्ट होने पर वर्षा होती है। यदि अमता नाड़ी में सौम्य और क्रूर ग्रहों के साथ चन्द्रमा का योग हो तो एक, तीन या सात दिन में, दो, चार या पाँच बार जल गिरता है। इसी प्रकार जलानाड़ी में सौम्य और क्रूर ग्रहों के साथ चन्द्रमा हो तो दो प्रहर या एक दिन या पाँच दिन तक वर्षा होती है। नीरा नाड़ी में क्रूर और सौम्य ग्रहों के साथ चन्द्रयोग हो तब एक प्रहर या डेढ़ दिन अथवा तीन दिन तक वर्षा होती है। एक नक्षत्र में चन्द्रमा और ग्रहों का योग होने पर जिस दिन ग्रहों के अंश-तुल्य चन्द्रमा जब तक रहता है, उस दिन तब तक बहुत वर्षा होती है। विशेष--चंद्रमा तथा ग्रहों की अशात्मक युति किसी एक काल में होगी। अतः 'वनमाला' के श्लोक में आये 'तद्भागगः' पद से उस नक्षत्र के चरण (नवांश) में ग्रहों के साथ जब तक चंद्रमा का योग रहे, ऐसा अर्थ ग्रहण करना उपयुक्त है। दो पुरुष-ग्रहों के परस्पर वेध होने से चारों ओर केवल हवा चलती है। स्त्री-ग्रह और पुरुष ग्रह के परस्पर वेध होने से वर्षा होती है। दो नपुसक ग्रहों के वेध में दुर्दिन (आकाश धूलधूसरित अथवा धूम्र सदृश बादलों से आच्छादित) रहता है। नक्षत्रों का स्त्री पुरुष नपुसकत्य आदि विवरण इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। स्थानाभाव से सप्तनाड़ी चक्र का विस्तृत फल यहाँ नहीं दे सकते हैं; उसके लिए वनमाला मामक तथा 'वर्षा-विज्ञान' नामक पुस्तकें पाठकों को पढ़नी चाहिए। स्थानीय रूप से निश्चित वर्षा ज्ञान के लिए पण्डितों को कठोर प्रयास करना पड़ता है; क्योंकि वर्षा एक ही समय किसी स्थान में कम, कहीं पर अधिक, कहीं बिल्कुल नहीं होती है। इसलिए ग्रथोक्त व्यापक वर्षा-योगों के स्थान-विशेष में वर्षा का समय बताने में ज्योतिषियों को अपनी बुद्धि और अनुभव से काम लेना होता है। जैसे - शतपद चक्र से इष्ट ग्राम का नक्षत्र जानकर सप्तनाड़ी चक्र में देखें कि वह ग्राह किसी नाड़ी का है; फिर उपर्युक्त प्रकारेण शुभाशुभ ग्रहों से उस नाड़ी-वेध का विचार करें तो अभीष्ट ग्राम के लिए वर्षा का भविष्य अधिक यथार्थ रूप में जान सकते हैं।

१.४ वृष्टि के आधार

वृष्टि का पूर्वानुमान करने की अनेक विधियाँ हैं जिनकों हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं शास्त्रीय एवं आधुनिक। शास्त्रीय अर्थात् हमारे देश में प्राचीन ग्रन्थों, लोकोक्तियों आदि द्वारा वर्षाज्ञान की परम्परागत विधि जिसमें बिना किसी महंगे साजो समान की सहायता के ही पंचांगादिकों के द्वारा वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है। यह भारतीय मनीषियों की स्वयं अन्वेषण प्रक्रिया द्वारा प्राप्त की

हुई विद्या है। आधुनिक अर्थात् सम्प्रति वैज्ञानिकों द्वारा कृत्रिम उपग्रहादि महंगे उपकरणों की सहायता से वर्षा का पूर्वानुमान करने की विधि का नाम है। जो अत्यन्त व्ययसाध्य होने के कारण बड़े प्रतिष्ठानों द्वारा ही सम्भव है। यहाँ दोनों विधियों के द्वारा वृष्टिविज्ञान का एक प्रायोगिक परिशीलन प्रस्तुत किया जा रहा है।

१.४.१ वृष्टिज्ञान के शास्त्रीय आधार

परामपरागत वृष्टिविज्ञान के अनुसार वर्षासम्भव ज्ञान के दो आधार हैं -

1. निमित्त परीक्षण विधि।
2. गणितीय सैद्धान्तिक विधि।

1. निमित्त परीक्षण विधि -

इस विधि से वर्षा ज्ञान के लिए निम्न तथ्यों का समय-समय पर निरीक्षण करते रहने से वृष्टिज्ञान की महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है।

वातावरणीय परिवर्तन - तापमान, वायुदाब एवं वायु दिशा, आर्द्रता आदि वातावरणीय परिवर्तन के सामान्य निरीक्षण द्वारा वर्षा का पूर्वानुमान किया जा सकता है।

जैविक हलचल - वातावरण में कोई भी परिवर्तन होने पर जीवजन्तुओं के व्यवहार में परिवर्तन होने लगता है। पशु पक्षी अपने व्यवहार से मौसम परिवर्तन एवं वर्षा आदि का पूर्वानुमान हमें प्रदान करते हैं। पशु, पक्षी, कीट, पतंग, पेड़ पौधे, मछलियाँ आदि जैविक प्राणियों के व्यवहार से परिवर्तन का निरीक्षण करने पर हमें वर्षा का ज्ञान हो जाता है। उदाहरणार्थ गर्मियों के मौसम में अधिक आर्द्रता (उमस) होने पर चिड़ियां मिट्टी को खोद कर उसमें लोटने लगती है जो घटना शीघ्र ही वर्षा होने सूचना प्रदान करती हैं।

रासायनिक परिवर्तन- वातावरण में अनुभव होने वाले रासायनिक परिवर्तन भी वर्षा होने की सूचना हमें देते हैं। कुछ जैविक और अकार्बनिक रासायन यौगिक मिलकर वातावरण में फैल जाते हैं जिनसे हमें वर्षा का ज्ञान हो सकता है। उदाहरणर्थ जब चारों दिशाओं में धुन्ध से भरा हुआ वातावरण हो तो शीघ्र ही वर्षा होने की सम्भावना बनती है।

भौतिक परिवर्तन- सूर्य, चन्द्र आदि के चारों ओर दिखाई देने वाला भौतिक परिवर्तन वस्तुतः वातावरण के कारण होता है। उदाहरणार्थ- जब हमें चन्द्रमा के चारों ओर मुर्गे की आंख के रंग की भाँति हल्का पीला प्रभामण्डल (परिवेश) दिखाई देता है, तो यह शीघ्र वर्षा होने का सूचक है।

आकाशीय परिवर्तन- मेघों की आकृति, बिजली चमकना, आंधी-तूफान, कुहरा-धुन्ध, बादलों की गड़गड़ाहट, इन्द्रधनुष आदि भी शीघ्र वर्षा होने की सूचना देते हैं।

2. गणितीय सैद्धान्तिक विधि

भारतीय परम्परा में वर्षा ज्ञान की कई सैन्द्धान्तिक पद्धतियां हैं जो सामान्य गणितीय प्रक्रिया या पंचांग के द्वारा आसानी से वर्षा सम्भव ज्ञान करा देती हैं।

ग्रह नक्षत्र से वृष्टि ज्ञान- ग्रहों की आकाशीय स्थिति एवं ग्रह-नक्षत्रों के परस्पर संयुति से भी वर्षा के योग एवं आधार बनते हैं। जैसे- बुध या शुक्र वक्रगामी होते हैं तो वर्षा की कम सम्भावना बनती है और जब शनि एवं मंगल, धनिष्ठा नक्षत्र में स्थित हो तो कोई सम्भावना नहीं बनती है।

सूर्य संक्रमण से वृष्टिज्ञान- सौर संक्रान्ति एवं सौरमास के कुछ विशिष्ट दिवसों के अध्ययन से दीर्घकालिन या तात्कालिन वर्षा की भविष्यवाणी की जा सकती है।

चन्द्र नक्षत्र से वृष्टिज्ञान- रोहिणी निवास सिद्धान्त के अनुसार जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है उस समय चन्द्र अधिष्ठित नक्षत्र से, नक्षत्रों की गणना रोहिणी तक करनी चाहिए। यदि संख्या 1, 2, 8, 9, 15, 16, 22 या 23 हो तो रोहिणी का वास समुद्र में माना जाता है जो वर्षा की अधिकता की संसूचक है।

नाड़ीचक्रों से वृष्टिज्ञान- कुछ सिद्धान्तों के अनुसार 28 नक्षत्रों को 2 नाड़ी चक्रों में विभक्त किया जा सकता है इसे 'द्वानाड़ी चक्र' कहते हैं। तीन नाड़ी चक्र में विभक्त होने पर 'त्रिनाड़ी चक्र' , सात भागों में विभक्त होने पर सप्तनाड़ी चक्र कहा जाता है। तब नक्षत्रों के सापेक्ष सूर्य व चन्द्र की स्थितियों का निराक्षण करके वर्षा का पूर्वानूमान किया जाता है।

दशतपा से वृष्टिज्ञान- दशातपा सिद्धान्त के अनुसार ज्येष्ठ अमावस्या से आषाढ शुक्ल दशमी तक के 10 चान्द्रदिवसों के आधार पर ही आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद एवं आश्विन इन चार वर्षाकाल के मासों में वर्षायोग का ज्ञान होता है।

निमित्त परीक्षण द्वारा वृष्ट्यावधि-

निमित्त परीक्षण सिद्धान्त के अनुसार दीर्घावधि, मध्यमावधि एवं अल्पावधि वृष्टिज्ञान के निम्न आधार है-

1. वार्षिक वृष्टि के हेतु

- आषाढ़ी योग
- फाल्गुनी योग
- स्वाती योग

2. मासिक एवं पाक्षिक वृष्टि के हेतु

- मेद्य गर्भधारण सिद्धान्त
- वायुगर्भधारण सिद्धान्त
- प्रवर्षण सिद्धान्त
- रोहिणी योग
- स्वातीयोग
- आषाढ़ी योग
- दशातपा सिद्धान्त
- मासिक ऋतु परीक्षण सिद्धान्त

3. **दैनिकवृष्टि के हेतु**

- मेद्य गर्भधारण सिद्धान्त
- वायुगर्भधारण सिद्धान्त
- प्रवर्षण सिद्धान्त
- रोहिणी योग
- स्वातीयोग
- आषाढ़ी योग
- दशातपा सिद्धान्त
- सद्योवृष्टि सिद्धान्त
- आनावृष्टिलक्षण सिद्धान्त

गणितीय सिद्धान्त द्वारा वृष्ट्यावधि-

इस सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण वर्ष की गणना के पश्चात् वृष्टिज्ञान में निम्नलिखित तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस आधार पर किसी भी वर्ष की सम्पूर्ण गणितीय प्रक्रिया पूर्ण कर वृष्टि का पूर्वानुमान कभी किया जा सकता है। दीर्घावधि पूर्वानुमान के लिए यह विधि सर्वाधिक सहायक है।

1. वार्षिक वृष्टि के हेतु

- संवत्सर
- संवत्सर अधिकारी
- गुरूवर्ष
- विंशोपक
- शकाब्दसंख्या
- आर्द्राप्रवेश
- मेघनाम
- नागनाम
- रोहिणीवास
- जलाढ़क

2. मासिक वृष्टि के हेतु

- द्विनाडी
- त्रिनाडी
- सप्तनाडी
- वृष्टि सम्बन्धि विविध योग

3. दैनिक वृष्टि के हेतु

- द्विनाडी
- त्रिनाडी
- सप्तनाडी

१.४.२ प्राचीन भारतीय वृष्टिविज्ञान के आधारभूत सिद्धान्त -

1. मेद्यों के वायु के आश्रित होने के कारण वायुगति के आधार पर भावी वृष्टि का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

2. पृथ्वी के वायुमण्डल में वायुगति का क्रम सुनिश्चित पूर्वापरक्रम के आधार पर होता है। अतः काल विशेष में देखी गई वायुगति का भावी गतिक्रम के सूचित करती है। यह वायुचक्र पौष से आरम्भ कर वर्ष में पूरा होता है।

3. खमण्डल में विद्यमान ग्रह एक दूसरे को अपनी गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण प्रभावित करते हैं। इन सूर्यादि ग्रहों का प्रभाव न केवल भूमण्डलीय तत्वों पर पड़ता है अपितु वायुमण्डल की गति एवं मेद्य व वायु में गतिक्रम पर भर पड़ता है। अतः एवं सौरमण्डलीय ग्रहों की स्थिति विशेष अर्थात् ग्रहों के उदयास्त गति-संक्रमण-योगादि के आधार पर भी पृथ्वी के वायुमण्डल में मेद्य व वायु की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर वर्षा का ज्ञान किया जा सकता हैं।

4. पृथ्वी के वायुमण्डल में मेद्य व वायु के संचारणादि के कारण सूर्य-चन्द्र के प्रकाशकिरणों का मार्ग भी प्रभावित होता हैं। अतः सूर्य-चन्द्र मण्डलों के चारों ओर दिखाई देने वाली प्रकृति - विकृति से मेद्य - वायु की स्थिति जानकर वर्षाज्ञान सम्भव हैं।

5. मेद्य व वायु के विकृत्ययदि कारणों से भूमण्डलगत रायासनिक पदार्थ प्राणी व वनस्पतियाँ भी प्रभावित होती हैं। अतः रासायनिक पदार्थों, प्राणियों व वनस्पतियों के परिवर्तनादि चेष्टाएँ देखकर वायुमण्डलगत पूर्वानुमान सम्भव हैं।

6. पृथ्वी के वायुमण्डल में तापक्रम, वायु की आर्द्रता एवं मात्रा से वृष्टि सम्भव ज्ञान होता हैं। यही सिद्धान्त पाश्चात्य मौसमविज्ञान का भी आधार हैं।

7. मेद्यों का गर्भकाल से लेकर वर्षाकान तक एक सुनिश्चित विकासक्रम है। यह चक्र या क्रम सामान्यतया 6 मास का होता हैं। इस क्रम में थोड़ा सा भी व्यतिवम हो जाने पर वृष्टि अवरूद्ध हो जाती हैं। तब विकृत मेद्यगर्भ पुनः अपने आधानकाल के मास को प्राप्त कर करकरूप (ओले) में बदल जाता हैं।

8. प्रतिसूर्य, परिवेष, इन्द्रधनुष, बिजली, उल्का, बज्र, निर्घात तारादि मेद्य व वायु की मूल विकृतियों का प्रभावक्षेत्र एवं प्रभाव अवधि सुनिश्चित होती हैं।

9. जिस प्रकार भारतीय पद्धति में संवत्सर 'मास' पक्ष एवं तिथियों का ग्रहगतिमूलक क्रम प्रत्येक कल्प एवं युग में पुनरावर्तित होता हैं उसी प्रकार मेद्य व वायु आदि का भी गतिचक्र व क्रम प्रत्येक कल्प एवं युग में पुनरावर्तित होता हैं। अतः भारतीय के आधार पर मेद्य व वायु का गतिक्रत उनकी विकृति आदि को जानकर वर्षा सम्भव ज्ञान का पूर्वानुमान होता हैं।

10. प्राचीन भारतीय पद्धति में वर्णित विभिन्न योगादिकों के द्वारा सम्पूर्ण वर्ष में वृष्टिगर्भ स्थिति सूचक आकाशादि के लक्षणों के पर्यवेक्षण से भावी वृष्टि का प्रमाणिक ज्ञान कर सकते हैं।

बोध प्रश्न -

1. वृष्टि का शाब्दिक अर्थ होता है।
   क. वर्षा ख. बादल ग. आकाश घ. वायु
2. निम्न में अन्न किसका पोषक है।
   क. प्राण ख. पैर ग. हाथ घ. कोई नहीं
3. वृष्टिज्ञान के शास्त्रीय आधार कितने है।
   क. २ ख. ३ ग. ४ घ. ५
4. निम्न में प्राय: बारिश कब होती है।
   क. पूर्णिमा ख. ग्रहोदयास्त में ग. युति तथा अमावस्या में घ. सभी
5. निम्न में वर्षा का नक्षत्र है।
   क. आर्द्रा ख. भरणी ग. रेवती घ. अश्विनी
6. निम्न में जलचर राशियाँ कौन है।
   क. १,४,८ ख.४,१०,१२ ग. ३,६,९ घ.५,७,१२

१.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि वृष्टि का पूर्वानुमान करने की अनेक विधियाँ हैं जिनकों हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं शास्त्रीय एवं आधुनिक। शास्त्रीय अर्थात् हमारे देश में प्राचीन ग्रन्थों, लोकोक्तियों आदि द्वारा वर्षाज्ञान की परम्परागत विधि जिसमें बिना किसी महंगे साजो समान की सहायता के ही पंचांगादिकों के द्वारा वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है। यह भारतीय मनीषियों की स्वयं अन्वेषण प्रक्रिया द्वारा प्राप्त की हुई विद्या है। आधुनिक अर्थात् सम्प्रति वैज्ञानिकों द्वारा कृत्रिम उपग्रहादि महंगे उपकरणों की सहायता से वर्षा का पूर्वानुमान करने की विधि का नाम है। जो अत्यन्त व्ययसाध्य होने के कारण बड़े प्रतिष्ठानों द्वारा ही सम्भव है।

'अन्नं ये प्राणाः' कलियुग में मानव का प्राण अन्न में ही है और अन्न की उत्पत्ति या नाश वृष्टि या वर्षा के अधीन है। वृष्टि सम्पूर्ण चराचर प्राणियों के लिए उनके जीवन का मूलाधार है। वृष्टि से ही जल की आपूर्ति होती है। ग्रहों के उदय, अस्त, राश्यन्तर और क्रान्ति-परिवर्तन, युति तथा अमावस्या, पूर्णिमा को प्रायः वर्षा होती है। ''**ग्रहाणामुदये वाऽस्ते राश्यन्तर मतेऽयने। संयोगे वाऽपि पक्षान्ते प्रायो वृष्टिः प्रजायते।**'' मंगल के राशि-चार के समय चन्द्रमा जलचर राशि (कर्क,

मकर, मीन) में हो तो वर्षा ऋतु में मेघ पृथ्वी पर बहुत शीघ्र जल देता है। गुरु के राशि-संचार से, बुध के संचार में, शनि के त्रिधा संचार यानी वक्री, मार्गी, राश्यन्तर अथवा उदय, अस्त, राश्यन्तर होने पर; शुक्र के उदय, अस्त होने पर मेघ शीघ्र ही चारों तरफ जल बरसाता है। वृष्टिविज्ञान के शास्त्रीय आधार दो है और वृष्टिज्ञान के लिए विविध पक्ष हैं।

१.६ पारिभाषिक शब्दावली

वृष्टि – वर्षा या बारिश

शास्त्रीय - शास्त्र में लिखित

उदयास्त – उदय और अस्त

पूर्णिमा – शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि

दर्श – अमावस्या

अमान्त – अमावस्या के अन्त काल

शुक्रोदय – शुक्र का उदय

१.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. क
3. क
4. घ
5. क
6. ख

१.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष रहस्य – जगजीवन दास गुप्ता

2. वृष्टिविज्ञान परिशीलन – प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी

3. वृहत्संहिता – वराहमिहिर

4. मकरन्दप्रकाश – आचार्य नारायण दैवज्ञ

१.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. नारद संहिता
3. वृहत्संहिता
4. वृष्टि विज्ञान

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. वृष्टि से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
2. वृष्टि के कारक का प्रतिपादन कीजिये।
3. वृष्टि ज्ञान के शास्त्रीय आधार का उल्लेख कीजिये।
4. पशुओं के शकुन आधार पर वृष्टि ज्ञान का वर्णन कीजिये।

इकाई – २ मेघ गर्भ लक्षण

इकाई की संरचना

२.१. प्रस्तावना

२.२. उद्देश्य

२.३. प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार मेघ का आधार

२.३.१. मेघ के भेद, लक्षण एवं गुण

२.३.२ मकरन्दप्रकाश ग्रन्थ के अनुसार मेघ का गणितीय पक्ष

२.४. मेघ गर्भ लक्षण

२.४.१. मेघ गर्भ काल

२.४.२ वृहत्संहिता के अनुसार मेघ गर्भ के अन्य लक्षण

२.४.३ मेघ गर्भ सम्भव लक्षण

२.४.४ मेघ गर्भ नाश लक्षण

२.५. सारांश

२.६. पारिभाषिक शब्दावली

२.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

२.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

२.९. सहायक पाठ्य सामग्री

२.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

२.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-604 के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – मेघ गर्भ लक्षण। इससे पूर्व आप सभी ने वृष्टि का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में मेघ गर्भ लक्षण का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

मेघ को सामान्य भाषा में हमलोग बादल के नाम से भी जानते है। शास्त्रीय रीति के अनुसार धूम्र, ज्योति, सलिल और मरूत से मिलकर मेघ का निर्माण होता है। शास्त्रों में ४ प्रकार के प्रमुख मेघ का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। मेघ गर्भ लक्षणों से जुड़े विषयों का हम इस इकाई में अध्ययन करने जा रहे हैं।

अत: आइए संहिता ज्योतिष से ही जुड़े एक महत्वपूर्ण विषय मेघ गर्भ लक्षण की चर्चा हम इस इकाई में करते है।

२.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि मेघ किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि मेघ का स्वरूप क्या है।
- मेघ के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे।
- मेघ गर्भ लक्षण को जान लेंगे।
- मेघ की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

२.३. मेघ परिचय

संस्कृत वाङ्मय के सुप्रसिद्ध महाकवि कालिदास ने स्वरचित 'मेघदूतम्' नामक काव्य में मेघ का वर्णन करते हुए कहा है कि –

'धूम्रः ज्योतिः सलिल मरूतां सन्निपातः क्वमेघः।' अर्थात् मेघों की उत्पत्ति धूम, ज्योति, सलिल एवं मरूत के संयोग से होती है। सूर्य की किरणों से तप्त समूद्र, नदी आदि का जल धूम वाष्प रूप में परिणत होकर मेघों की उत्पत्ति करता हैं, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ऐसा भी कहा गया है।

मेघ सामान्यतया दो प्रकार के होते हैं- अभ्र, और मेघ। जिन बादलों से तुरन्त जल नहीं बरसता है अपितु कुछ काल तक उनमें ही स्थित रहता हैं वे अभ्र कहे जाते हैं। यथा- **अग्ने वै धूमो**

जायते धूमादभ्रमभाट् वृष्टिः। यह धूम से बने बादल हितकारी, दावाग्नि धूम से निष्पन्न बादल वनों के लिए लाभदायी है, मृतकधूम से बने बादल अशुभ और अभिचारान्ति के धूम से बने बादल प्राणियों के नाशक कहे गये हैं। मेघ शब्द मेहन करने के कारण कहे जाते हैं जो सद्य वर्षा करते हैं। इस प्रकार वृष्टि कारक मेघों का वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता हैं।

वस्तुतः सूर्य की किरणों से तप्तजल जलवाष्प वायु के द्वारा आकाश में पहुँचाता हैं। जहाँ वह शीतल होकर पुनः जलकणों में बदल जाता हैं। जब शीतलता के कारण वायु संकुचित होती हैं तब जलकण परस्पर निकट आकर एकत्रित होकर भारी हो जाता हैं। जिन्हें वायु ढोने में सक्षम नहीं रह पाती अतः वे ही जलकण वर्षारूप में भूमि पर गिरते हैं। जल के वाष्प रूप में परिणत होने के काल से वर्षण तक के समय को ही वृष्टिगर्भकाल कहते हैं। यह वृष्टि चक्र ईश्वर की प्रेरणा से चलता हैं, ऐसा प्राच्यों का मत हैं। ब्रहावैवर्त्त पुराण में वृष्टि पद्धति का उल्लेख करते हुए कहा गया हैं कि - सूर्य द्वारा ग्रहण किया हुआ जल ही समयानुसार बरसात है। सूर्य, मेघ आदि सबको विधाता ने ही निर्मित किया हैं। सूर्य इच्छानुसार समुद्र से जल लेकर बादलों के लिए देते हैं और वे बादल वायु द्वारा संप्रेरित होकर ही पृथ्वी के पृथक्-पृथक् स्थान में समय-समय यथोचित जल देते हैं। यह सब ईश्वर की इच्छा से ही आविभूर्त होता हैं। यहाँ सूर्यकिरणों से जल लेने की पद्धति को ही सूर्य के जल लेने के रूपक में वर्णित किया गया हैं। यहाँ भौतिक एवं पौराणिक पक्षों के समन्वय का अच्छा प्रयास दिखाई देता हैं।

१.३.१ मेघ के भेद, लक्षण एवं गुण-

1. मेघ के स्थिति-

मेघ की चार प्रकार की स्थितियाँ होती हैं- अभ्र, बादल, धन और घटा। इनमें आकाश के अन्दर फैलने वाला अभ्र कहलाता हैं। मेघ के टुकड़ों को बादल कहते हैं, फैल हुए खण्ड धन होतें हैं, और खण्ड-खण्ड न होकर एक ही रूप में फैले हुए हो तो उसे घटा कहते हैं।

2. मेघ के प्रकार-

मेघ चार तरह के होते हैं - नाग, पर्वत, वृषभ एवं अर्बुद। इन चार का कारण जल ही हैं अर्थात् ये वर्षाकारक होते हैं। मेघों की योनि अर्थात् उत्पत्ति के कारण तीन हैं अग्नि, ब्रहा और पक्ष। इनकी वृद्धि का साधारण हेतु धूम हैं।

अग्निज मेघ-

स्विन्न (गीले पदार्थ) और गर्भ से उत्पन्न मेघों का धुम से प्रवर्तित होना अग्निज का सामान्य लक्षण हैं। इन मेघों में श्रेष्ठ मेघ दुर्दिन (बादलयुक्त दिवस) की हवा से उत्पन्न हुए होते हैं। हाथी, भैंस और सूअर के आकार एवं रंग की तरह दिखाई देने वाले ये मेघ, वन, पर्वत एवं शिखरों पर वर्षा करते

हैं। थोड़ी वर्षा करने वाले बड़े शरीर वाले, पृथ्वी के समीप आये हुए मेघ एक या आधे कोस में ही बरसते हैं।

ब्रहाज मेघ-

आकाश में नक्षत्र और ग्रहों के योग से जिनकी उत्पत्ति होती है वे मेघ ब्रहाज कहलाते हैं, अग्नि से पैदा होने के कारण ये मेघ आकाश में गए हुए होते हैं। ब्रहाज मेघों के प्रसंग से अग्नि से उत्पन्न हुए मेघ भी बरस जाया करते हैं।

पक्षज मेघ-

पर्वतों के पक्ष कटने से जो मेघ बनते हैं, वे पक्षज कहलाते हैं। वे मेघ अनेक प्रकार के आकृतिवाले और घोर आवाज करने वाले होते हैं। युगान्त में पृथ्वी को जल से पूरित करने वाले और कल्पना वृष्टि पैदा करने वाले ये मेघ संवर्ताग्नि से बने होते हैं।

3. मेघों की जातियाँ-

कादम्बिनि में वर्णित है की शीतकाल में दिग्गज जाति के मेघों से हिम की वर्षा होती हैं। परन्तु सामान्यतया मेघों की निम्न चार जातियाँ मानी जाती हैं- आवर्त, संवर्त, पुष्कर और द्रोण। इनमें पुष्कर जाति का मेघ दुःख से जल देने वाला , आवर्त्त जाति का मेघ निर्जल, संवर्त जाति का मेघ अधिक जल वाला और द्रोण जाती का मेघ घान्य के योग्य बरसने वाला होता हैं। कृषि पाराशर के अनुसार इनके नामानुसार वर्ष में वृष्टिफल विचारना चाहिए। एतदर्थ शकाब्द में 3 जोड़कर 4 का भाग देने पर शेष को मेघ नाम से जानना चाहिए। यथा शकाब्द्- शेष अर्थात् आवर्त मेघ इन मेघों का फल कृषि पाराशर में निम्न प्रकार से कहा गया हैं-

मेघनाम फल

1. आवर्त
2. संवर्त
3. पुष्कर
4. द्रोण

एकादेश में वर्षा

सर्वदेशीय वर्षा

दुष्कर वर्षा

अधिक वर्षा

अन्य कुछ विद्वानों के अनुसार वृष्टिसूचक 9 मेघ होते हैं। इनका फल निम्नवत् हैं-

मेघ नाम	फल
1. आवर्त	अल्पवर्षा
2 . संवर्त	वायुपीड़ा
3. पुष्कर	मन्दवर्षा
4. द्रोण	अच्छी वर्षा
5. कालक	अल्पवर्षा
6 . नील	शीघ्रवर्षा
7 . वरुण	अर्णवाकारवर्षा (अधिक वर्षा
8. वायु	वर्षा का आभाव
9. तम	वर्षा का आभाव

4 . मेघों के लक्षण-

अधिक पवन चलना या सर्वथा पवन का बन्द होना अधिक गरमी पड़ना या अधिक ठण्ड का ही होना, अधिक बादलों का होना अथवा सर्वथा ही बादलों का न होना ये 6 चिन्ह मेघ के होते हैं। अर्थात् अच्छे मेघ के आने के ये लक्षण हुआ करते हैं।

5. मेघों के विशिष्ट गुण-

आठ दिशाओं में से सूर्य द्वारा त्यक्त, सूर्यद्वारा आक्रमित एवं आक्रमणीय दिशा, ये तीन दिशायें सूर्य से प्रकाशित या दीप्तदिक् कहलाती हैं। अन्य पाँच दिशाएं शान्त कहलाती हैं। शान्त दिशा में श्याम, रक्त अथवा पीले रंग का स्निग्ध और मन्दगतिक मेघ का दर्शन हो तो जलागमन जानना चाहिए। इसके विपरीत शान्त दिशा में जो मेघ शुक्लवर्ण का दिखाई दे तो स्निग्ध एवं मन्दगति होने पर भी मेघ को रिक्त ही समझना चाहिए।

सुन्दर रंग एवं आवाज वाले मन्दगति और शुभ मुहूर्त्त में उठे हुए मेघ सदा सर्वत्र जल बरसाने वाले होते हैं। अच्छी बिजली, गन्ध, स्वर, वर्षा, वायु एवं बूंदों वाले मेघ सुभिक्षकारक होते हैं। इसके विपरीत रूखे मेघ वायु पैदा करते हैं, खराब गन्ध वाले व्याधि एवं खराब रंग व आवाज वाले मेघ नहीं बरसते हैं। केसर के जल सदृष तथा नीले व काले रंग के मेघ दक्षिण से अग्निकोण को जाते हुए वहीं बरस जाते हैं। लाल, पीले अथवा नीले रंग के मेघ उत्पत्ति को जाते हुए शीघ्र ही चतुर्दिक हवा करते हुए बरस जाते हैं। दक्षिण से उत्पत्ति को जाये और उत्पत्ति से दक्षिण को आये तो वह मेघ बरसता नहीं अगर बरसे तो कई दिन तक बरसते हैं। पश्चिम से जब मेघ वायव्य, नैर्ऋत्य आदि कोणों की तरफ जाते हैं तब वे अल्पजल वाले हो जाते हैं, उनमें वृष्टि नहीं होती हैं। पश्चिम से जब मेघ

आकुल होते हुए आते हैं तब वे वायु पैदा करते हैं और फिर वृष्टि करते हैं। पश्चिम से पूर्व और से पश्चिम को जब मेघ जाते हैं तब वे आपस भिड़ते हुए दस दिन तक वर्षा करते हैं। प्रशान्त मौसमी वायु की दिशा से सफेद बादलों के पर्वत सदृश प्रखण्य मौसमी वायु वाली दिशा में धीरे से चले जाते हैं। इसी प्रकार प्रचण्ड मौसमी वायु वाली दिशा में रूई के ढेर के सदृश जो श्वेत बादल होते हैं वे चले जाते हैं। रूई के ढेर के समान सफेद बादल वायव्य या उत्तर से वेग से आते हो तो वे आठों प्रहर अवश्य वर्षा करेगें। यदि रूई के ढेर के समान श्वेत बादल नैर्ऋत्य या दक्षिण से आते हो तो वे शीतकाल में वर्षा के अन्दर ओले गिरते हैं। तमाम, और नीलकमल की सी प्रभा वाले, मोती और चाँदी की सी आभा वाले और गर्भ में जलचरों की आकृति वाले मेघ अधिक जल बरसाने वाले होते हैं।

२.३.२ मकरन्दप्रकाश ग्रन्थ के अनुसार मेघ का गणितीय पक्ष –

शकाब्दो रामसंयुक्तस्तथा वेदैर्विभाजित:।
शेषं मेघं विजानीयात् आवर्तादि क्रमेण च।।
आद्य आवर्तक: प्रोक्तो मेघ: संवर्त्तको पर:।
तृतीय: पुष्करो ज्ञेयश्चतुर्थो द्रोणसंज्ञक:।।

इष्टशकाब्द में ३ जोडकर ४ से भाग देरने पर शेष के अनुसार आवर्त्तक आदि मेघ होते है। १ शेष में आवर्त्तक, २ शेष में संवर्त्तक, ३ में पुष्कर और ४ शेष में द्रोण नाम का मेघ जानना चाहिए।

उदाहरणम् –

$$\frac{१९४२ + ३}{४} = \frac{१९४५}{४} = ४८६ \text{ भागफल, शेष } -१$$

यहाँ शेष १ होने के कारण आवर्त्तक नामक मेघ हुआ। इसी प्रकार मेघ का आनयन करना चाहिए।

२.४ मेघ गर्भ लक्षण

भद्रबाहुसंहिता में मेघों के लक्षण एवं फलों का प्रतिपादन करते हुए ग्रन्थकार का अभिमत है कि यदि अंजन के समान गहरे काले मेघ पश्चिम दिशा में दिखाई पड़े और ये चिकने तथा मन्दगति वाले हो तो भारी जल वृष्टि होती हैं। पीले पुष्प के समान स्निग्ध मेघ पश्चिम दिशा में स्थित हो तो जल की वृष्टि तत्काल करते हैं। लाल वर्ण के तथा की स्निग्ध और मन्दगति वाले मेघ पश्चिम दिशा में

दिखलाई दे तो अच्छी जल वृष्टि होती हैं। श्वेतवर्ण के स्निग्ध और मन्दगति वाले मेघ पश्चिम दिशा में दिखलाई दें तो जितना जल उनमें रहता हैं। उतनी वर्षा करके वे निवृत्त हो जाते हैं। यदि स्निग्ध, सौम्य, मृदुल, आवाज वाले, मन्दगतिक मेघ उत्तम मुहूर्त्त में दिखलाई पड़े तो सर्वत्र वर्षा होती हैं। सुगन्ध (केशर और कस्तुरी के समान गन्ध वाले) मनोहर गर्जन करने वाले, स्वाटु रस वाले, मीठे जल वाले मेघ समुचित जल की वर्षा करते हैं।

चिकने बादल अवश्य बरसते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उत्तर दिशा के आश्रित बादल प्रायः काल के अनुसार नियमतः वर्षा करते हैं। उत्तर और पूर्व के बादल सदा उत्तम वर्षा करते हैं और दक्षिण व पश्चिम के बादल थोडी़ थोड़ी वर्षा करते हैं। यदि बादल काले, पीछे, ताँबे और सफेद वर्ण के हों तो वे उत्तम वर्षा की सूचना देते हैं। यदि बादल देवागनाओं और प्राणियों के सदृश विचरण करें और स्निग्ध हों तो वे शुभ होते हैं। और उनसे उत्तम वर्षा होती हैं। बादल शुक्ल वर्ण के हों, स्निग्ध हों विद्युत युक्त एवं विचित्र रंग के बादल हो तो तत्काल वर्षा होती हैं। शुभ शकुन और शुभ चिन्हों सहित बादल हो तो वृष्टि होती हैं।

मेघ गर्भप्रसवसंज्ञक नक्षत्र -

गर्भप्रसव सहिस दिग्मितचन्द्रभेषु
दृश्यो यदा जलधर: खलु यत्र तत्र।
आर्द्रादितो रवियुता दशतारका: स्यु
गर्भान्विता जलकरा नहि गर्भहीना।।

श्लोक का अर्थ है कि पौष मास में मूल से दस नक्षत्रों में यदि बादल हों, तो मेघ गर्भधारण होता है। यदि वृष्टि हो तो गर्भपात समझना चाहिए। इनके प्रसवकाल आर्द्रा से १० नक्षत्र पर्यन्त सूर्य नक्षत्र में होते हैं। अर्थात् मूल में गर्भधारण हो, तब आर्द्रा में वृष्टि होती है। इसी तरह प्रत्येक नक्षत्र का विचार होता है।

२.४.१ मेघ गर्भकाल-

शीतकाल को मेघ गर्भ धारण का, उष्णकाल को दोहद (गर्भपोषण) एवं वर्षाकाल को प्रसव (वृष्टि) का समय माना जाता हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार मार्गशीष से फाल्गुन तक शीतकाल, चैत्र से आषाढ़ तक उष्णकाल एवं श्रावण से कार्तिक तक वर्षाकाल और आषाढ़ से आश्विन तक वर्षाकाल माना जाता हैं। शीतकाल में गर्भधारण होता हैं, इसके पश्चात् उष्णकाल में उसका परिपाक एवं वर्षाकाल में वह प्रसूत हो जाता है अर्थात् बरसात हैं। किसी का अभिमत है कि ज्येष्ठा नक्षत्र के आस

पास जब अमावस्या होवे तब गर्भकाल और ज्येष्ठा नक्षत्र के आसपास जब पूर्णिमा होवे तब प्रसवकाल अर्थात् वर्षाकाल समझना चाहिए। प्रायः मार्गशीर्ष की अमावस्या को एवं ज्येष्ठ की पूर्णिमा को ज्येष्ठा नक्षत्र आया करता हैं। कई विद्वान मानते हैं कि मूल नक्षत्र के उत्तरार्द्ध में सूर्य के आने से गर्भकाल और आर्द्रा नक्षत्र पर सूर्य के आने से प्रसवकाल होता हैं। अर्थात् मूल नक्षत्र पर जब सूर्य आये तब से 6 दिन बाद से 4 मास तक गर्भकाल और आद्रा पर तब सूर्य आये तब से 4 मास तक प्रसवकाल माना जाता हैं। मूल पर सूर्य पौष के महीने में और आद्रा पर आषाढ़ में प्रायः आया करता है और 13 दिन तक रहता हैं। कुछ विद्वान कहते हैं कि जिस पात से सूर्य दक्षिणायन हो वह गर्भकाल का प्रारम्भ और जिस पात से सूर्य उत्तरायण हो वह प्रसवकाल माना जाता हैं। गर्भकाल के प्रारम्भ का दिन मानने के विषय में किसी का अभिमत हैं कि स्वाति पर सूर्य के आने से, या स्वाति के सूर्य में स्चाति नक्षत्र पर चन्द्रमा के होने से अथवा स्वाति के सूर्य पर अश्विनी के चन्द्रमा होने से अथवा अनुराधा के सूर्य में अनुराधा नक्षत्रगत चन्द्रमा के आने से या मूल पर सूर्य के आने से गर्भकाल का प्रारम्भ होता हैं। इन पाँचों में मूलार्क से उत्तर के दृढ़फल वाले एवं पहिले के मन्द फलवाले हैं। आचार्य सिद्धसेन का अभिमत हैं कि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के बाद गर्भ के दिन होते हैं। जबकि गर्गादि महर्षियों के मतानुसार वराहमिहिर का अभिभत हैं कि मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से जब चन्द्रमा के जिस नक्षत्र में स्थित होने से गर्भस्थिति होती हैं, उससे 195 वें दिन में प्रसव होता हैं। अर्थात् चान्द्रमान से 195 वें दिन में वर्षा होती हैं। समाससंहिता में भी इसी प्रकार गर्भविपाकावधि कही गयी हैं।

२.४.२ मेघ गर्भ के अन्य लक्षण-

वराहमिहिर का कथन है कि गर्भ स्थिति काल में सुखस्पर्श और उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में उत्पन्न वायु, निर्मल आकाश, स्निग्ध और श्वेत परिवेश से व्याप्त चन्द्र और सूर्य, आकाश में विस्तृव और स्निग्ध मेघ, सूच्याकार, क्षुर्याकार लाहित वर्ण, काक के अण्डे के समान, मयूरकण्ठ के समान हो, निर्मल चन्द्र और नक्षत्रों से युत आकाश, इन्द्रधनुष, मेघों के मधुर शब्द, विद्युत् और प्रतिसूर्य से युक्त पूर्वापरा संध्या, सूर्य के अभिमुख होकर उत्तर, ईशान या पूर्वदिशा में स्थिम पक्षी और मृग, नक्षत्रों के उत्तर मार्ग से होकर निर्मल उत्पात् रहित ग्रहों का गमन, बाधा रहित वृक्षों का अंकुरण, मनुष्य और पशु हर्षित, इन सब गुणों से युक्त गर्भ का समय हो तो गर्भ पुष्ट करनी चाहिए।

मोती या चाँदी के समान श्वेत् अथवा तमाल वृक्ष, नीलकमल या के समान अतिकृष्ण, अथवा जलचर जन्तु के समान कान्ति वाले मेघ हों तो बहुत वृष्टि करने वाले होते हैं। अति भयंकर सूर्य किरण से तापित, अल्पवायु से युक्त गर्भकालिन मेघ 195 वें दिन (प्रसवकाल) में धाराप्रवाह

अतिवृष्टि करते हैं। गर्भपुष्टि लक्षण के विषय में आचार्य वराहमिहिर का मत है कि वायु, जल, विद्युत, मेघ का शब्द और मेघों से युक्त गर्भ हो तो प्रसवकाल बहुत वृष्टिप्रद होता हैं। इस तरह के गर्भ काल में यदि बहुत वृष्टि हो तो प्रसवकाल में अधिक वृष्टि नहीं होती हैं।

ग्रामीण लोकोक्तियों में मेघ गर्भाधान के दश लक्षण कहे जाते हैं। जैसे- बादल का होना, हवा का बहना, बिजली चमकना, पानी का बरसना, आकाश का कड़कना, बादलगर्जन, ओले का पड़ना, इन्द्रधनुष, सूर्य पर मण्डल (परिवेश) होना और सर्दी पड़ना।

मेघ गर्भों के विशेष लक्षण की विवेचना करते हुए आचार्य वराहमिहिर प्रसव काल का निर्देश देते हुए कहते है कि अमान्त मान से मार्गशीर्ष शुक्ल और पौष शुक्ल में स्थित गर्भ मन्द अथवा अल्प वृष्टि प्रदायक होता हैं। पौष कृष्ण पक्ष में गर्भ हो तो श्रावण शुक्ल पक्ष में, माघ शुक्ल पक्ष में गर्भ हो तो श्रावण कृष्ण में गर्भ हो तो भाद्रपद शुक्ल में फाल्गुन शुक्लपक्ष में गर्भ हो तो भाद्रपद कृष्ण में, फाल्गुन कृष्ण में गर्भ हो तो आश्विन शुक्ल में, चैत्र शुक्ल में गर्भ हो तो आश्विन कृष्ण में और चैत्र कृष्ण में गर्भ हो तो कार्तिक शुक्ल में प्रसव (वृष्टि) होता हैं।

गर्भ की वृद्धि के लिए ऋतु के स्वभाव से उत्पन्न अवशिष्ट लक्षणों के अनुसार पौष और मार्गशीर्ष में दोनों सन्ध्याओं के रक्तवर्ण और परिवेश युत मेघ शुभ होते हैं तथा मार्गशीर्ष में अल्पशीत और पौष में हिम का गिरना शुभ होता हैं। माघ मास में प्रबल भयंकर वायु, अतिशीत और मेघ रहित सूर्य का उदयास्त शुभ होता हैं। फाल्गुन मास में रूक्ष और भयंकर वायु, मेघों का उदय, सूर्य व चन्द्र का निर्मल तथा अखण्ड परिवेश, कपिल या ताम्र वर्ण का सूर्य शुभ हैं। चैत्र मास में वायु, मेघ, वृष्टि और परिवेश युत गर्भ होता हैं। वैशख मास में मेघ, वायु, जल, विद्युत और मेघ के गर्जन युत गर्भ शुभ होता हैं।

ऋतुओं के स्वभाव जनित एवं सामान्य लक्षणों से युत होने पर गर्भ की वृद्धि होती है। सब ऋतुओं में पूर्वभाद्रपदा, उत्तर भाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा एवं रोहिनी इन पाँच नक्षत्रों में बढ़ा हुआ गर्भ प्रसव काल में अधिक वृष्टि करता हैं। इसी प्रकार शतभिषा, आश्लेषा, आद्रा, स्वाती एवं मघा नक्षत्र में उत्पन्न गर्भ बहुत दिन तक पुष्ट रहता हैं। चन्द्रमा और सूर्य के सौम्य ग्रहों (चन्द्र, शुक्र, बुध, गुरू) से युक्त होने पर गर्भ रहे तो वर्षा अच्छी होती हैं। यदि क्रूरग्रहों (शनि, मंगल, राहु, केतु, वक्री बुध) से युक्त होने पर गर्भ रहे तो वज्रपात, ओले, मत्स्य आदि के सहित वृष्टि होती हैं। रवि, भौम, बुध आदि ग्रह गण स्निग्ध गति के हो, पुष्ट हों तथा तारों का प्रकाश खूब चमकीला व स्निग्ध हो और ग्रहण से युक्त न हो, ग्रहों की गति सूर्य के दक्षिण तरफ से हो तो ये भी गर्भ के पुष्ट करने वाले लक्षण होते हैं। इसी तरह यदि पशु-पक्षी भी स्वभाव से ही बिना घवराये हुए की तरह सुन्दर आवाज़ करते हों और

प्रसन्न दिखाई दे, तो गर्भ पुष्ट हुआ समझाना चाहिए।

२.४.३ मेघ गर्भ सम्भव लक्षण-

मेघ गर्भधारण के समय मध्यम व कोमल गति की हवा, शरीर को प्रसन्नता देने वाली हवा उत्तरी ईशान या पूर्वी हवा चलती हैं। मेघ गर्भ धारण के समय सूर्य व चन्द्र में चमक अधिक होती हैं। और चन्द्रमाँ या सूर्य के चारों और गोलाकार बादलों का वलय (परिवेश) बनता हैं। जब आकाश में स्थूल व स्निग्ध मेघ छाये हुए हों और आकाश का रंग काक के अण्डे व मोर के दिन चन्द्र ज्येष्ठ ये मूल नक्षत्र में होता है उस दिन मेघ धारण करते हैं। गर्भ धारण के समय बादल विशाल व घने होते हैं, एवं बादलों का आकार गर्भधारण के समय सूई के समान नुकीले या खुरपे, उस्तरे या फावड़े के समान होते हैं।

गर्भधारण के समय बादलों का रंग कौवों के अण्डो़ के समान अत्याधिक काला होता है आकाश में चन्द्रमा व तारे भी खुब चमकते हैं। सन्ध्या समय में इन्द्रधनुष दिखाई देता हैं तथा बादल मधुर गर्जना करते हैं। बिजली कड़कती हैं पर सूर्य अवश्य दिखाई पड़ता हैं ऐसा समय मेघ का गर्भधारण वाला होता हैं। गर्भधारण समय मे पक्षी व जंगली पशु प्रायः उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा की और मुँह करके खड़े होते हैं या भागते दिखाई पड़ते हैं लेकिन सूर्य मण्डल की ओर नहीं देखते हैं। उस समय पशु पक्षियों की आवाज मधुर होती हैं।

मेघ गर्भधारण के समय ग्रहों के बिम्ब बड़े आकार वाले, नक्षत्रों के उत्तरर मार्ग से गमन करने वाले होते हैं। ग्रहों की किरणें कोमल, उत्पातरहित होती हैं। पेड़ पौधों में अंकुरण होता हैं। मनुष्य व पशु प्रसन्नता अनुभव करते हैं। इस प्रकार के लक्षणों को मार्गशीर्ष शक्ल से वैशाख के अन्त तक देखना चाहिये। उपरोक्त सभी लक्षण मेधगर्भ की पुष्टि का संकेत करते हैं। गर्भकाल में बादल तो दिखे, सुर्य की चमकीली धुप हो, मानसुनी हवा चले तो प्रसव काल में अर्थात् वर्षाकाल में बहुत तीव्र वर्षा होती हैं। मार्गशीर्ष मास में गर्भ लक्षण हो तो 195 दिन व्यतीत होने के बाद छः दिनों तक वर्षा होती हैं तथा माघ में गर्भधारण हो तो प्रसव काल मे 13 दिनों तक लगातार वर्षा होती हैं।

गर्भधारण के समय हवा चलना, मामूली पानी गिरना बिजली कड़कना, बादलों की गड़गड़ाहट व बादलों का खूब छा जाना ये पाँच लक्षण गर्भ पुष्टि की पहचान हैं यदि इन पाँच लक्षणों से युक्त मेघ गर्भधारण करे तो आगामी वर्षा काल मे सौ योजन तक चारों ओर वर्षा होती हैं। यदि उपरोक्त पाँच लक्षणों मे से एक-एक लक्षण कम होते हुए गर्भधारण हो तो आगामी वर्षा काल में उतनी-उतनी वर्षा कम होती जायेगी। उक्त चारों निमितों में 50 योजना तक चारों ओर वर्षा होती हैं एवं तीन निमितों में 15 योजन तक चारों ओर वर्षा तथा दो निमितों में योजन तक और 1 निमित में 5

योजन तक वर्षा होती हैं।

यदि उस गर्भ नक्षत्र में सूर्य या चन्द्रमा स्थित हो तथा उन्हें बुध गुरू शुक्र में से कोई एक देखता हो या योग करे तो ऐसा गर्भधारक मेघ प्रसव के समय खुब वर्षा करता हैं। यदि गर्भकालिक नक्षत्र पापग्रह से युक्त हो तो उपल, वज्र और मछली से युत वृष्टि होती हैं। ग्रहों के उदयास्त के समय, विशेषतया बुध के उदयास्त के समय, ग्रहयुद्ध समागम, अयन परिवर्तन के समय, सूर्य वर्षा नक्षत्र में प्रवेश करें तो वर्षा होने की सम्भावना होती है।

२.४.४ मेघ गर्भनाश लक्षण-

यदि गर्भकाल में उल्कापात, विद्युत, धूलि की वृष्टि, दिशाओं में जलन (दिग्दाह), भूकम्प, तामस कीलकादि केतुओं का दर्शन, ग्रहयुद्ध, निर्घाटत (शब्द), रूधिरादि विकारयुत वृष्टि, परिध, इन्द्रधनुष, राहु, चन्द्रग्रहण या सूर्यगहण का दर्शन हो तो ये लक्षण गर्भ के नाशक होते हैं। ऋतुओं के स्वभाव के विपरित असामान्य लक्षण दिखाई दे तो गर्भ की हानि होती हैं। शतभिषा, आश्लेषा, आद्रा, स्वाति एवं मघा इन नक्षत्रों में बढ़े हुए मेघगर्भ जितने दिन त्रिविध उत्पातों (दिव्य, आन्तरिक्ष एवं भौम) से हत हो उतने दिन तक वर्षा नहीं होती हैं।

यदि गर्भकालिक नक्षत्र पापग्रह से युक्त हो तो उपल, वज्र और मछली से युक्त वृष्टि होती हैं, यदि गर्भकालिक नक्षत्र में चन्द्र यर रवि स्थित होकर शूभग्रह से युक्त हों या दृष्ट हों तो गर्भ अत्यधिक वर्षाप्रदायक होता है।

बोध प्रश्न -

1. लाल वर्ण के तथा की स्निग्ध और मन्दगति वाले मेघ पश्चिम दिशा में दिखलाई दे तो क्या फल होता है?

   क. उत्तम वृष्टि ख. अनावृष्टि ग. मध्यम वृष्टि घ. अतिवृष्टि
2. निम्न में मेघदूतम् किसकी रचना है?

   क. वराहमिहिर ख. कालिदास ग. नारायण घ. कोई नहीं
3. सामान्यतया मेघ के कितने प्रकार है?

   क. २ ख. ३ ग. ४ घ. ५
4. मेघ की जातियाँ कितने प्रकार की कही गयी है?

   क. ६ ख. ५ ग. ४ घ. ८
5. मेघ ज्ञान का गणितीय सूत्र क्या है?

क. इष्टशकाब्द ÷ ३ ख. (इष्टशकाब्द +३) / ४ ग. इष्टशकाब्द × ३ घ. कोई नहीं

6. माघ में गर्भधारण हो तो प्रसव काल मे कितने दिनों तक लगातार वर्षा होती हैं।

क. १२ ख.१३ ग.१४ घ.१५

२.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि मेघों की निष्पत्ति धूम, ज्योति, सलिल एवं मरूत के संयोग से होती हैं, ऐसा प्राचीनाचार्यों का मत हैं। इसलिए मेघदूत में कालिदास कहते हैं- ''धूमज्योतिः सलिल मरूतां सन्निपातः क्व मेघः।''सूर्य की किरणों से तप्त समूद्र, नदी आदि का जल धूम वाष्प रूप में परिणत होकर मेघों की उत्पत्ति करता हैं। मेघ सामान्यतया दो प्रकार के होते हैं- अभ्र, और मेघ। जिन बादलों से तुरन्त जल नहीं बरसता है अपितु कुछ काल तक उनमें ही स्थित रहता हैं वे अभ्र कहे जाते हैं। यथा- अग्ने वै धूमो जायते धूमादभ्रमभाट् वृष्टिः। यह धूम से बने बादल हितकारी, दावाग्नि धूम से निष्पन्न बादल वनों के लिए लाभदायी है, मृतकधूम से बने बादल अशुभ और अभिचारान्ति के धूम से बने बादल प्राणियों के नाशक कहे गये हैं। मेघ शब्द मेहन करने के कारण कहे जाते हैं जो सद्य वर्षा करते हैं। इस प्रकार वृष्टि कारक मेघों का वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता हैं। वस्तुतः सूर्य की किरणों से तप्तजल जलवाष्प वायु के द्वारा आकाश में पहुँचाता हैं। जहाँ वह शीतल होकर पुनः जलकणों में बदल जाता हैं। जब शीतलता के कारण वायु संकुचित होती हैं तब जलकण परस्पर निकट आकर एकत्रित होकर भारी हो जाता हैं। जिन्हें वायु ढोने में सक्षम नहीं रह पाती अतः वे ही जलकण वर्षारूप में भूमि पर गिरते हैं। जल के वाष्प रूप में परिणत होने के काल से वर्षण तक के समय को ही वृष्टिगर्भकाल कहते हैं। यह वृष्टि चक्र ईश्वर की प्रेरणा से चलता हैं, ऐसा प्राच्यों का मत हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में वृष्टि पद्धति का उल्लेख करते हुए कहा गया हैं कि - सूर्य द्वारा ग्रहण किया हुआ जल ही समयानुसार बरसात है। सूर्य, मेघ आदि सबको विधाता ने ही निर्मित किया हैं। सूर्य इच्छानुसार समुद्र से जल लेकर बादलों के लिए देते हैं और वे बादल वायु द्वारा संप्रेरित होकर ही पृथ्वी के पृथक्-पृथक् स्थान में समय-समय यथोचित जल देते हैं। यह सब ईश्वर की इच्छा से ही आविभूर्त होता हैं। यहाँ सूर्यकिरणों से जल लेने की पद्धति को ही सूर्य के जल लेने के रूपक में वर्णित किया गया हैं। यहाँ भौतिक एवं पौराणिक पक्षों के समन्वय का अच्छा प्रयास दिखाई देता हैं।

२.६ पारिभाषिक शब्दावली

मेघ – बादल

धूम्र - धुआँ

ज्योति – प्रकाश

सलिल – वायु

मेघ गर्भ – वृष्टि होने के पूर्व मेघ स्थिति

भौतिक – शारीरिक

पौराणिक – पुराणों में कथित या लिखित

२.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. ख
3. क
4. ग
5. ख
6. ख

२.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मकरन्दप्रकाश – मूल लेखक – आचार्य नारायण, टीका – पं. लषण लाल झा
2. वृष्टिविज्ञान परिशीलन – आचार्य देवीप्रसाद त्रिपाठी
3. ज्योतिष रहस्य – जगजीवन दास गुप्ता
4. वृहत्संहिता – मूल लेखक – आचार्य वराहमिहिर, टीका – पं. अच्युतानन्द झा
5. मेघदूतम् – मूल लेखक – कालिदास

२.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वृहत्संहिता
2. नारद संहिता
3. वशिष्ठ संहिता

4. वृष्टिविज्ञान परिशीलन

२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. मेघ का परिचय दीजिये।
2. मेघ गर्भ लक्षण का प्रतिपादन कीजिये।
3. शास्त्रीय आधारों पर मेघ का वर्णन कीजिये।
4. मेघ गर्भ लक्षण एवं गर्भ विनाश का उल्लेख कीजिये।

इकाई - ३ वृष्टि विचार एवं वृष्टि भंग योग

इकाई की संरचना

३.१. प्रस्तावना

३.२. उद्देश्य

३.३. वृष्टि विचार

३.३.१. वृष्टि के प्रकार

३.४. वृष्टि भंग योग विचार

३.५. सारांश

३.६. पारिभाषिक शब्दावली

३.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

३.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

३.९. सहायक पाठ्य सामग्री

३.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

३.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-604 के द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – वृष्टि विचार एवं वृष्टि भंग योग। इससे पूर्व आप सभी ने मेघ गर्भ लक्षण का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में संहिता ज्योतिष से जुड़े महत्वपूर्ण विषय - वृष्टि एवं वृष्टि भंग विचार का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

वृष्टि किसे कहते है? उसके अन्तर्गत कौन-कौन से विषयों का समावेश है? उसका स्वरूप एवं महत्व क्या है ? वृष्टि भंग योग क्या है? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे।

आइए वृष्टि एवं वृष्टि भंग योग से जुड़े विभिन्न प्रकार के विषयों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

३.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वृष्टि किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि वृष्टि के प्रकार कितने है।
- वृष्टि भंग योग को समझ सकेंगे।
- वृष्टि के कारकों को जान लेंगे।
- वृष्टि की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

३.३. वृष्टि विचार

‘‘वृषु सेचने’ इस धातु से ‘‘स्त्रिया क्तिन्’’ इस सूत्र से क्तिन् प्रत्यय करने पर वर्षण अर्थ में **वृष्टि** शब्द निष्पादित होता हैं। कूर्मपुराण के अनुसार सूर्य की किरणों से पिया हुआ जल बादलों में ठहरता हैं फिर वह जल समय आने पर भूमि पर गिरता है और उससे समुद्र भरता हैं। इसी प्रकार ब्रहमाण्ड पुराण में उल्लिखित हैं कि तेज (सूर्य) सब भूतों (भौतिक वस्तुओं) से किरणों के द्वारा जल ले लेता हैं। समुद्र (पारमेष्ठय समुद्र) के अम्भ नामक जल के योग से किरणें आप् नामक सांसारिक जल को ले जाती हैं। अपनी गति के कारण हटा हुआ सुर्य भौतिक वस्तुओं से उठाये हुए उस जल को फिर श्वेत और कृष्ण किरणों द्वारा मेघ में बांधता हैं। मेघों के अन्दर आया हुआ वह जल वायु से प्रेरित होकर फिर वापिस भूमि पर बरस जाता हैं। तेज किरणों से तपते हुए और मन्दनवल वाले मेघ वर्षाकाल में क्रुद्ध हुए की तरह बड़ी-बड़ी धाराओं से बरसते हैं।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार जब आर्द्रवायु की अपार मात्रा किसी कारणवश ऊपर उठती हैं तो उसके तापमान में गिरावट आती रहती है और अंत में एक ऊँचाई पर जाकर जाकर उसमें संघनन की प्रकिया सम्पन्न होने लगती हैं। ऊपर उठती वायु में संघनन प्रकिया से मेघों की उत्पत्ति होती हैं। मेघ जल की महीन-महीन बूँदों अथवा छोटे-छोटे हिमकणों अथवा दोनों ही से निर्मित होते हैं। मेघों में अपनी वायु व्यवस्था होती हैं। जलबूदें तथा हिमकण मेघों के अंदर उपस्थित पवन प्रवाह के साथ ऊपर नीचे होते रहते हैं। ये जलबूदें आपस में संयुक्त होकर बड़ी बूँदों में परिवर्तित हो जाती हैं तो उनका भार इतना अधिक हो जाता हैं कि वे मेघों को त्यागकर भूमि पर बरसने लगती हैं। इस प्रकार मेघकणों के आकार वृद्धि की क्रियाविधि को ही वर्षण या वृष्टि प्रक्रम कहते हैं।

वृष्टि के कई प्रकार हैं। जिनमें वर्षा, करका एवं हिम का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिलता हैं। प्राचीन काल में वृष्टि का अभिप्राय जल वृष्टि अथवा वर्षा से लिया जाता था। ओले, जो सामान्यतया वर्फ के शुष्क बड़े गोले के समान होते हैं, के 12 प्रभेद निम्न हैं- धाराङ्कुर, राधारङ्कुर, वर्षेपल, घनोपल, मेघोपल, मेघास्थि, मटची, पुंजिका, बीजोदक, घनकफ, वार्चर एवं करका। सम्भवतः उपर्युक्त भेद ओलों की आकृति के आधार पर कहे गये हैं। ओले को 'करका' भी कहा जाता हैं। अधिक ओलों के गिरने से दुर्भिक्षभय रहता हैं। करकोत्पत्तिका के विषय में बृहत्संहिता में वर्णित हैं कि यदि धारण हुआ समय में आकार करका वृष्टि अथवा करकर मिश्रित जलवृष्टि करता हैं। हिम के चार प्रभेद होते हैं- प्रालेय, तुषार, धूमिका एवं अवश्याय।

1. प्रालेय - जल वर्फ के समान कठिन हो जाने पर प्रालेय कहलाता हैं। मेरूप्रान्त में हिमालय में और ओले आदि में इस प्रालेय का रूप दिखाई देता हैं।

2. तुषार - जो अपने बरस जाने के बाद और ओलों के बरसने के बाद दो तीन दिन तक अत्यन्त कंपाने तथा वृक्षों का नाश करने वाला होता हैं, उसको तुषार कहते हैं।

3. धूमिका - जो प्रायः प्रातः काल में पौष, माघ के महीनों में सूर्य की किरणों को क्षीण बनाकर धुएं की तरह सबको ढक लेती हैं, उसको धूमिका कहते हैं। कुहिढ़, कुहेड़ि, कुहेलिका, नभोरेणु, कुज्झरिका, कुज्झटि, धूममहिषी और रतान्द्री ये धूमिका के नाम हैं, यह धूमिका अत्यन्त घनीभूत बनकर अवश्याय (ओस) के पतन का कारण होती हैं।

4. अवश्याय (ओस)

हर रोज जल के जो छोटे-छोटे कण प्रतिरात्रि में बरसते हैं इसीलिए उन्हें अवश्याय कहते हैं। कादम्बिनी में उल्लिखित है कि जिस देश में खारी कड़वी, दुर्गन्धयुक्त और धान्यनाशक वर्षा होती हैं, वह देश खेती के नाश से नष्ट हो जाता हैं। वर्षा के अन्दर मत्स्य और मेढ़कों के गिरने से सुभिक्ष होता

हैं तथा शंख, शंबूक (जल में पैदा होने वाली सीयें) और कछुवी या छोटा कछुवा इनके गिरने से दुर्भिक्ष होता हैं।

वृष्टि या वर्षण की निम्न अवस्थाएं होती हैं- धारासम्पात, आसार, सीकर, अम्बुकण द्रप्स, स्तोक, पृषदबिन्दु, पृषत्, विपुट्, वृष्टि और वर्षा वृष्टि के नाम हैं। करका और हिमपात भी वृष्टि के ही नाम हैं। आधुनिक विचारधारा के अनुसार अवक्षेपण या वृष्टि के निम्न प्रकार हैं-

३.३.१ वृष्टि के प्रकार-

1. फुहार-

यह सूक्ष्म जलकणों (व्यास 0.5 मि मी से कम) का सम अवक्षेपण हैं। फुहार साधारणतः शान्त या धीमी वायुधारा में ही गिरती हैं। आरोही वायुधारा तेज होने से, फुहार कण छोटे होने के कारण नीचे गिर सकेंगे। फुहार साघारणतः स्तरी मेघ द्वारा उत्पन्न होते हैं।

2. वर्षा-

0.5 मि.मी. व्याय से बड़ी बूँदें साधारणतः वर्षा कहलाता हैं। इन बूँदों की दीर्घतम सीमा 5.5 मि.मी हैं। इससे बड़ी बूँदें साधारणतः टूट जाया करती हैं। वर्षा मध्य स्तरी, स्तरी कपासी, स्तरी, कपासी वर्षी एवं कपासी बादलों से हो सकती हैं।

3. बौछार-

थोडे समय की तेज और बड़ी बूँदों वाली वर्षा बौछार कहलाती हैं। यह साधारणतः कपासी वर्षी एवं कपासी मेघों से सम्बन्धित घटना हैं। अन्य मेघ स्टेशन से गुजरते समय बौछार दे सकते हैं।

4. हिमकारी वर्षा-

वह वर्षा, जो भूमि पर जल के रूप में पहुँचती हैं, पर भूमि पर पहुँचने के बाद जम जाती हैं, यह हिमकारी वर्षा कहलाती हैं।

5. तुषारपात-

सफेद बर्फ के रवेदार टुकडों की वर्षा तुषार या हिम कहलाती हैं, ये रवे अपारदर्शी तथा सितारों जैसी आकृति के 4 ये 5 मि.मी. व्यास के सुन्दर टुकड़े होते हैं। बड़े रवे भूमि पर तभी गिरते हैं, जब भूमि का तापमान कम से कम 00 से हो। भुमि का तापमान थोड़ा अधिक (10 से 50) होने से तुषारपात के रूप में होता हैं। तुषारपात साधारणतः मध्यस्तरी, स्तरी कपासी, स्तरी, कपासी तथा कपासी वर्षी मेघों से सम्बन्धित होता हैं।

6. तुषार गोली-

यह सफेद अपारदर्शी गोलाकार या शंखाकार बर्फ से दानों का अवक्षेपण है जिसका व्यास

2 से 5 मि.मी. तक हो सकता हैं, साधारणतः भूमि से टकराने पर ये दाने टूट जाते हैं। ये स्तरी कपासी या कपासी वर्षी मेघों से सम्बधित हो सकते हैं।

7. हिमगोली ये हिम सूचिका-

परदर्शी, गोलाकार या अनियमित आकार (व्यास 5 मि.मी से कम) की गोलियाँ मध्यस्तरी या कपासी वर्षी बादलों से प्राप्त होती हैं। बर्फ से कुछ रवे सूइयों के आकार (2 मि.मी. लम्बे) के भी अवक्षेपित होते हैं। सूइयां बहुत हल्की होती हैं और कभी कभी वायुमण्डल में निलम्बित होकर प्रकाशीय घटनाएं उत्पन्न करती हैं।

8. सहिम वृष्टि-

जब भूमि तल का तापमान कुछ अधिक होता है, तुषारपात भुमि तक आते आते जल में पिघल जाता हैं। अतः जल और तुषार दोनों का अवक्षेपण साथ-साथ प्रतीत होता हैं, यह सहिम वृष्टि कहलाती हैं।

9. ओला-

बर्फ के अपेक्षाकृत बड़े टुकडो़ (व्यास 5 से 5 मि.मी. या इससे अधिक) का गिरना ओला कहलाता हैं। कुछ टुकड़े साधारणतः अल्प पारदर्शी तथा कई तहों में बने होते हैं तथा कुछ टुकडो़ बहुत छोटे मुलायम सफेद बर्फ के गोले होते हैं।

ओले साधारणतः कपासी वर्षी मेघ से गिरते हैं। इस मेघ में ऊष्व प्रवाह द्वारा जलकण, जब हिमांक स्तर से ऊपर पहुँचते हैं, तो कुछ छोटे हिमकण के रूप में जम जाते हैं, ये कण अतिशीतल जल के सह अस्तित्व में बर्जटान प्रक्रम के अनुसार आकार में वृद्धि प्राप्त करते हैं तथा भार के कारण नीचे गिरते समय संघटन द्वारा और बढते जाते हैं। अत्यधिक तीव्र ऊध्व प्रवाह के कण पुनः उठते हैं और उसी प्रकार से उन्हें और वृद्धि करने का पर्याप्त समय मिल जाता हैं। अतः ओलों के विकास के लिए आवश्यक है ऊर्ध्वाधर विकास के मेघ बहुत तीव्र वायुधाराओं से युक्त हों। हर बार उठने और गिरने से इन टुकड़ों पर तुषार की नई परतें चढती जाती हैं। यह दो... क्रिया तब तक चलती रहती हैं, जब तक कि बर्फ के टुकड़ों का आकार ऊध्व धाराओं को सन्तुलित करने में सक्षम नहीं हो जाता। यही कारण है कि साधारणतः ओले में विभिन्न घनत्वों के बर्फ और तुषार की कई तहें पायी जाती हैं। छोटे ओले प्रायः भुमि तक आते-आते पिघलकर कर या तो समाप्त हो जाते हैं या बहुत छोटे हो जाते हैं।

वृष्टि का काल

प्राचीन भारतीय मतानुसार शीतकाल में वृष्टि के बादलों वाष्पीकरण की प्रक्रिया द्वारा

निर्माण होना प्रारम्भ होता है अतः इसे धारणकाल कहा जाता हैं। उष्णकाल हो उस मेघगर्भ का पोषण होता हैं वर्षाकाल में प्रसव अर्थात् प्रवर्षण होता हैं। यह जलचव पूरे 1 वर्ष का हैं। मेघ के गर्भकाल, दोहद (पुष्टिकाल) एवं प्रसवकान के विषय में अनेक मतान्तर हैं। किसी का मत है कि - मार्गशीर्ष से चार महीने फाल्गुन शीतकाल, चैत्र से चार महीने आषाढ़ तक उष्णकाल तथा श्रावण से चार महीने तक वर्षाकाल होता हैं। सम्प्रति- कार्तिक से माघ तक शीतकाल, फालगुन से ज्येष्ठ तक उष्णकाल तथा आषाढ़ से आश्विन तक वर्षाकाल माना जाता हैं। किसी का अभिमत ज्येष्ठ नक्षत्र के आस पास जब अमावस्या (मार्गशीर्ष अमावस्या) होवे तब गर्भकाल और ज्येष्ठ नक्षत्र के आसपास जब पूर्णिमा (ज्येष्ठ पूर्णिमा) हो तो प्रसवकाल अर्थात् वर्षाकाल समझना चाहिए। कुछ विद्वान मानते हैं कि मूलनक्षत्र के उतरार्ध में सूर्य के आने से (पौषमाह) गर्भकाल तथा आर्द्रा नक्षत्र पर सूर्य के आने से 4 मास तक प्रसवकाल समझना चाहिए। वराहमिहिरादि आचार्यों का मत है कि जिस नक्षत्र पर चन्द्रमा के रहते हुए गर्भस्थिति हुई हो, उसी नक्षत्र पर आठवीं बार चन्द्रमा के आने से अर्थात् 195 दिन में, उस दिन की गर्भस्थिति का जल बरस जाता हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीनाचार्यों के मतानुसार प्रायः आषाढ़मास से आश्विन मास तक वर्षाकाल होना चाहिए। वस्तुतः वृष्टिकाल का ज्ञान करना अत्यन्त जटिल प्रक्रिया हैं। क्योंकि वृष्टि का तात्पर्य मात्र वर्षा से न होकर हिमपात, ओलावृष्टि इत्यादि से भी होता हैं। साथ ही वृष्टि शीतकाल एवं उष्णकाल में होती रहती हैं। यहाँ प्राचीनचार्यों का वृष्टिकाल से तात्पर्य मानसूनी पवनों द्वारा होने वाली वर्षा से हैं जो प्रायः उपर्युक्त मासों में अर्थात् वर्षाकाल में ही होती हैं। साथ ही जिस पर भारत की कृषि अवलम्बित हैं।

आधुनिक मौसम वैज्ञानिकों के मातनुसार भी भारत मानसून प्रधान देश हैं। जम्मु और कश्मीर चरम दक्षिणी तट तथा पूर्वी घाट के क्षेत्रों को छोड़कर पूरे देश में कुल वर्षा का 80 से 90 प्रतिशत भाग केवल दक्षिणी पश्चिमी मानसून के चार महीने में प्राप्त होता हैं। अतः प्राचीनचार्यों ने इसी दक्षिणी पश्चिमी मानसून से प्राप्त होने वाली वर्षा के काल को, जिस भारत की कृषि अवलम्बित हैं, को जानने का प्रयत्न किया। **भारत जलवायु को निम्नांकित चार ऋतुओं में बाँटा जा सकता हैं-**

(1) शीतकाल या उत्तरी पूर्वी मानसून - दिसम्बर से फरवरी
(2) ग्रीष्मऋतु या पूर्व मानसून काल - मार्च से मई
(3) वर्षा–ऋतु या दक्षिणी पश्चिमी मानसून काल - जून से सितम्बर
(4) संक्रमण मानसून या उत्तरी पूर्वी मानसून - सितम्बर से नवम्बर।

1. शीतकालीन वर्षा

शीतकाल में वर्षा किसी स्थान की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं। इस काल में आर्द्र और अस्थिर पवनों से वर्षा हुआ करती हैं। उत्तरी पूर्वी मानसून पवन ठंडे और शुष्क होते हैं। यदि ये पवन बंगाल की खाड़ी से गुजरते हैं। तो समुद्री भाग से जलवाष्प ग्रहण करते हैं इनसे अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह में खुब वर्षा होती है। साथ ही तमिलनाडु के तटीय क्षेत्रों में भी इन पवनों द्वारा अच्छी वर्षा होती हैं। उत्तरी भारत प्रायः शुष्क; धुपदार एवं मेघरहित रहता हैं। परन्तु शीतोष्ण चक्रवात, जो पश्चिम की ओर से आते हैं, से मौसम परिवर्तित हो जाता हैं। इन चक्रवातों से भारत के उत्तरी मैदान में वर्षा होती हैं जबकी हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों मे हिमपात होता हैं। वैसे तो नवम्बर के अन्त में ही चक्रवातों का भारत में आगमन शुरू हो जाता है, परन्तु जनवरी-फरवरी में इनकी संख्या सबसे अधिक रहती हैं। कैन्ड्रयू के अनूसार सामान्यतया नवम्बर में दो दिसम्बर में चार तथा जनवरी से अप्रैल तक प्रत्येक माह पाँच-पाँच चक्रवात भारत में प्रवेश करते हैं।

2. ग्रीष्मऋतु कालीन वर्षा

ग्रीष्मकाल वास्तव में वर्षा का समय नहीं हैं, अपितु वर्षा की तैयारी का मौसम हैं। फिर भी इस काल में भी समय समय पर कहीं संवहनी वर्षा होती हैं और कहीं चक्रवाती वर्षा। वर्षा सामान्यतया बहुत कम होती है परन्तु ग्रीष्मऋत में बिहार से असम तक तडित झंझा द्वारा, जिसे 'काल वैशाखी' का नाम दिया गया है, काफी वर्षा हो जाती है। इस वर्षा को बसंत ऋतु की तूफानी वर्षा भी कहते हैं। असम में इसे चायवर्षा भी कहते हैं। संवहनी धाराओं से दक्षिणी भारत के आंतरिक क्षेत्रों में 10 से.मी . तक वर्षा हो जाती हैं। जिसे 'आम वर्षा' कहते हैं। कर्नाटक के तटीय क्षेत्र तथा केरल में अप्रैल मई में 24 से.मी. के लगभग वर्षा हो जाती हैं। मई के अंत में यहाँ मानसून का आगमन हो जाता हैं।

3. वर्षाऋतु कालीन वर्षा-

भारत, बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान, म्यानमार आदि देशों की 90 मि0मी0 के लगभग वर्षा दक्षिणी पश्चिमी मानसून द्वारा होती है जो लगभग 25 मई से 15 दिसम्बर तक प्रभावी रहता हैं। दक्षिणी पश्चिमी मानसून भारतीय प्रायद्वीप की स्थिति और आकृति विशेष के कारण भारतीय क्षेत्र में प्रवेश करने के पश्चात् दो ओर से भारत में प्रवेश करती हैं। जबकी दूसरी शाखा बंगाल की खडी़ की तरफ से प्रवेश करती हैं। इन दोनों शाखाओं द्वारा ही समूचे भारत को कुल वार्षिक वर्षा का भाग प्राप्त होता हैं।

दक्षिणी पश्चिमी मानसून की अविश्वसनीयता उसके अभ्युदय, अवधि, मात्रा एवं प्रत्यावर्तन

के समय के अनिश्चित होने के कारण बनी रहती हैं। मौसम वैज्ञानिकों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मानसून आगमन की तिथियां निर्धारित की हुई है। यथा-

प्रदेश	**मानसून अभ्युदय तिथि**
केरल	1 जुन
मुम्बई(महीराष्ट्र)	14 जुन
बिहार	10 जुन
उत्तरप्रदेश	14 जुन
पंजाब	1 जुलाई

परन्तु शायद ही किसी वर्ष मानसून का भारत के किसी राज्य में आगमन निर्धारित तिथि के अनुसार होता हो, सामान्यतया यह देखा गया है कि मानसून का किसी क्षेत्र में आगमन निर्धारित तिथि के 2-4 दिन पहले या बाद होता हैं। कभी कभी तो मानसून 13-14 दिन के बिलम्ब से पहुँचता हैं। इसी प्रकार भारत के विभिन्न क्षेत्रों में दक्षिणी पश्चिमी मानसून की अवधि 2 से 5 महीने तक रहती है, परन्तु सभी दिन वर्षा नहीं होती हैं।

4. शरद् ऋतु कालीन वर्षा-

यह लगभग 16 सितम्बर से 15 दिसम्बर तक रहती हैं। वास्तव में यह काल मानसून की वापसी का होता हैं। 15 दिसम्बर तक संपुर्ण भारत से दक्षिण-पश्चिमी मानसून समाप्त हो जाता है। इसका स्थान सर्दियों के मानसून पवन ले जाते हैं। अक्टुबर से भारत के आधे पूर्वी भाग में लौटते मानसून में वर्षा होती रहती है। 15 अक्टुबर तक दक्षिणी भारत के कर्नाटक आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु तथा केरल में भी हटते मानसून पवनों से वर्षा होती हैं। 15 दिसम्बर तक तमिलनाडु के केवल पूर्वी भाग में लौटते मानसून से वर्षा होती है। यह क्षेत्र गर्मियों के बजाय सर्दियों में वर्षा प्राप्त करता है। इस काल में प्रायः वर्षा नहीं होती हैं परन्तु वर्षा के सम्बन्ध में दो बातें महत्वपूर्ण हैं। प्रथम सम्पूर्ण भारत में अक्टूबर में तापमान में वृद्धि के साथ संवहनी धाराएं उत्पन्न हो जाती हैं जिनके ऊपरी सिरे पर कपासी मेघों की उत्पत्ति हो जाती हैं। ये कपासी मेघ बाद मे कपासी वर्षी मेघों का रूप धारण कर तडित झंझा की घटनाओं के साथ घनघोर वर्षा करते हैं। अक्टुबर में तडित झंझा की सबसे अधिक (औसतन 92) धटनाएं केरल राज्य की धटती हैं। यहाँ वर्षा सामान्यतया दोपहर बाद एवं रात्रि से पहले होती हैं परन्तु उत्तर की ओर बढ़ने पर ये घटनाएं कम होती जाती है। उत्तरी भारत में सामान्यतया अक्टुबर में तडित झंझा की घटनाएं नहीं घटती परन्तु कभी-कभी किसी क्षेत्र में स्थानीय रूप से संवहनी धाराओं द्वारा उत्पन्न कपासी मेधों के कपासी वर्षी मेघों में बादल जाने पर तडित

झंझा युक्त वर्षा की सम्भावना अक्टुबर में सायंकाल और रात्री के प्रथम प्रहर में घटती हैं। द्वितीय महत्वपूर्ण बात यह हैं कि अक्टुबर नवम्बर में अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में उष्ण-कटिबंधी प्रभार के चक्रवातों की उत्पत्ति होती हैं, जिनसे भारत के तटीय क्षेत्रों में वर्षा होती हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत के किसी न किसी क्षेत्र में प्रत्येक मौसम में वर्षा होती हैं परन्तु वर्षा का 85-90 प्रतिशत भाग दक्षिणी -पश्चिमी मानसून पवनों द्वारा जून से सितम्बर में ही प्राप्त होता हैं। अतः इसे वर्षा ऋतु या वर्षाकाल भी कहा जाता हैं।

३.४ वृष्टि भंग योग विचार

वृष्टि भंग से तात्पर्य यहाँ वर्षा का अभाव से है। शास्त्रीय रीति में यह कब-कब होत है। इसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

वृहत्संहिता के अनुसार -

यदि प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढ़ा आदि सभी नक्षत्रों में वृष्टि न हो तो प्रसवकाल में अनावृष्टि होती है। अर्थात् वृष्टि नहीं होती। यहाँ वृष्टि भंग होता है।

यदा वह्नौ वायुर्वहति गगने खण्डिततनुः।
प्लवत्यस्मिन् योगे भगवति पतंगे प्रवसति।।
तदा नित्योद्दीप्ता ज्वलनशिखरालिंगिततला
स्वगात्रोष्मोच्द्वासैर्वमति वसुधा भस्मनिकरम्।।

अर्थात् यदि आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन अस्त समय में अप्रतिहत गति वाली अग्नि कोण की वायु चले तो उस वर्ष में सर्वत्र अग्नि की ज्वाला से व्याप्त पृष्ठ वाली प्रज्जवलित पृथ्वी अपने शारीरिक उष्ण उच्छवास के द्वारा भस्मों को वमन करती है। अर्थात् पृथ्वी पर वृष्टि का अभाव, अग्नि का भय, प्रजाओं का नाश आदि उपद्रव होता है।

आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में तालपत्र, लताओं की विस्तार औरवृक्षों से वाहनों को नचाते हुए, कठोर शब्द वाले दक्षिण की तरफ हवा चले तो तालरूप अंकुश से ताड़ित हस्ती की तरह मेघ कृपण मनुष्य की अत्यल्प वृष्टि छोड़ता है। अर्थात् वृष्टि भंग होता है।

रोहिणी पतन फल –

यदि समुद्रगता शशिवल्लभा बहुजलैर्धरणीपरिपूजिता।
तटगता यदि सा शुभवृष्टिदा भवति सन्धिगतादलवृष्टिदा।।

जिस वर्ष समुद्र में रोहिणी का पतन हो, उस वर्ष अतिवृष्टि, तट में पतन होन से सुवृष्टि और सन्धि में खण्ड वृष्टि होती है।

नारद संहिता के अनुसार वृष्टिभंग योग -

अल्पवृष्टि: पापदृष्टे प्रावृट्काले चिराद्भवेत्।
चन्द्रवद्भार्गवे सर्वमेवंविधगुणान्विते।।

अर्थात् जिस दिन चन्द्रमा केवल शुभ या पापग्रह से विद्ध हो उस दिन अल्पवृष्टि होता है।

सद्योवृष्टिकर: शुक्रो यदा बुधसमीपगा:।
तयोर्मध्यगते भानौ तदा वृष्टिनाशनम्।।

प्रश्नकाल में यदि शुक्र-बुध के समीप हो या योग करता हो तो सद्य: वृष्टि होती है। और यदि शुक्र बुध के मध्य सूर्य हो तो वृष्टि का नाश होता है।

मघा, पू0फा0, उ0फा0, अस्त, चित्रा,पू0षा0, पू0भा0 स्वाती, विशाखा और अनुराधा नक्षत्रों से अलग नक्षत्रों में शुक्र रहे तो वर्षा नहीं होती है।

सूर्यस्थ राशि से पूर्वापर राशियों पर समीप में यदि चन्द्रमा आदि ग्रह रहे तो वर्षा होती है और वक्री होकर दूरस्थ राशि का होने पर वर्षा नहीं होती है।

आर्द्रा से मूल नक्षत्र तक समय-समय पर कृषि के अनुकूल वर्षा होती है और रेवती आदि १० नक्षत्रों में वर्षा नहीं होती है।

सूर्य और चन्द्रमा के आसन्न उत्तर दिशा में परिवेष मण्डल हो अथवा विजली चमके और मेढक बोले तो वर्षा की हानि होती है।

बोध प्रश्न -

1. वृष्टि शब्द की निष्पत्ति किस धातु से हुई है।
   क. वृष ख. वृष सेचने ग. दा घ. क्त
2. निम्न में आर्द्र शब्द का क्या अर्थ है।
   क. भीगा ख. वर्षा ग. वृष्टि घ. कोई नहीं
3. ओले के कितने प्रभेद कहे गये हैं।
   क. १० ख. ११ ग. १२ घ. १३
4. हिम के कितने प्रकार है।
   क. ३ ख. ४ ग. ५ घ. ६
5. इकाई के अनुसार वृष्टि के कितने प्रकार कहे गये हैं।

क. ८ ख. ९ ग. १० घ. ११

6. भारत के जलवायु को कितने ऋतुओं में बाँटा गया है।

क. २ ख.३ ग.४ घ.५

३.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ''वृषु सेचने' इस धातु से ''स्त्रिया क्तिन्'' इस सूत्र से क्तिन् प्रत्यय करने पर वर्षण अर्थ में **वृष्टि** शब्द निष्पादित होता हैं। कूर्मपुराण के अनुसार सूर्य की किरणों से पिया हुआ जल बादलों में ठहरता हैं फिर वह जल समय आने पर भूमि पर गिरता है और उससे समुद्र भरता हैं। इसी प्रकार ब्रहमाण्ड पुराण में उल्लिखित हैं कि तेज (सूर्य) सब भूतों (भौतिक वस्तुओं) से किरणों के द्वारा जल ले लेता हैं। समुद्र (पारमेष्ठय समुद्र) के अम्भ नामक जल के योग से किरणें आप् नामक सांसारिक जल को ले जाती हैं। अपनी गति के कारण हटा हुआ सुर्य भौतिक वस्तुओं से उठाये हुए उस जल को फिर श्वेत और कृष्ण किरणों द्वारा मेघ में बांधता हैं। मेघों के अन्दर आया हुआ वह जल वायु से प्रेरित होकर फिर वापिस भूमि पर बरस जाता हैं। तेज किरणों से तपते हुए और मन्दनवल वाले मेघ वर्षाकाल में क्रुद्ध हुए की तरह बड़ी-बड़ी धाराओं से बरसते हैं।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार जब आर्द्रवायु की अपार मात्रा किसी कारणवश ऊपर उठती हैं तो उसके तापमान में गिरावट आती रहती है और अंत में एक ऊँचाई पर जाकर जाकर उसमें संघनन की प्रकिया सम्पन्न होने लगती हैं। ऊपर उठती वायु में संघनन प्रकिया से मेघों की उत्पत्ति होती हैं। मेघ जल की महीन-महीन बूँदों अथवा छोटे-छोटे हिमकणों अथवा दोनों ही से निर्मित होते हैं। मेघों में अपनी वायु व्यवस्था होती हैं। जलबूदें तथा हिमकण मेघों के अंदर उपस्थित पवन प्रवाह के साथ ऊपर नीचे होते रहते हैं। ये जलबूदें आपस में संयुक्त होकर बड़ी बूँदों में परिवर्तित हो जाती हैं तो उनका भार इतना अधिक हो जाता हैं कि वे मेघों को त्यागकर भूमि पर बरसने लगती हैं। इस प्रकार मेघकणों के आकार वृद्धि की क्रियाविधि को ही वर्षण या वृष्टि प्रक्रम कहते हैं।

३.६ पारिभाषिक शब्दावली

वृष्टि – बारिश या वर्षा

मेघ - बादल

वृष्टिभंग योग – वृष्टि न होने का योग

आर्द्र – भीगा हुआ

वर्षा – हिन्दी शब्द है।

हिमकण – बादलों का कण

पवन - हवा

भूमि- पृथ्वी

३.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. ग
4. ख
5. ख
6. ग

३.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष रहस्य – जगजीवन दास गुप्ता
2. वृष्टिविज्ञान परिशीलन –प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी
3. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर
4. नारद संहिता – टीका – पं. रामजन्म मिश्र

३.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वृहत्संहिता
2. मकरन्दप्रकाश
3. वशिष्ठ संहिता
4. लोमश संहिता

३.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. वृष्टि योग का उल्लेख कीजिये।
2. वृष्टि से क्या तात्पर्य है। वर्णन कीजिये।
3. वृष्टि प्रकार का प्रतिपादन कीजिये।
4. वृष्टि भंग योग का विस्तृत वर्णन कीजिये।
5. वृष्टि पर टिप्पणी लिखिये।

इकाई - ४ प्राकृतिक आपदा का विवेचन

इकाई की संरचना

४.१. प्रस्तावना

४.२. उद्देश्य

४.३. प्राकृतिक आपदा परिचय

४.४. दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्ष उत्पात विवेचन

४.५. सारांश

४.६. पारिभाषिक शब्दावली

४.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

४.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

४.९. सहायक पाठ्य सामग्री

४.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

४.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के द्वितीय खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – प्राकृतिक आपदा का विवेचन। इससे पूर्व आप सभी ने मेघ और वृष्टि से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई से संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत ही प्राकृतिक आपदाओं का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

प्राकृतिक आपदा से तात्पर्य है- प्रकृतिजन्य आपदा जैसे – भूकम्प, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, दिव्यभौमअन्तरिक्ष उत्पात, उल्कापातादि। प्रकृति से सम्बन्धित उत्पात को प्राकृतिक आपदा की संज्ञा दी गयी है।

अत: आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े प्राकृतिक आपदाओं के विभिन्न स्वरूपों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

४.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि प्राकृतिक आपदा किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि प्राकृतिक आपदा के अन्तर्गत क्या-क्या होता है।
- प्राकृतिक आपदा के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- प्राकृतिक आपदाओं का नाम जान लेंगे ।

४.३. प्राकृतिक आपदा परिचय

प्राकृतिक आपदा से तात्पर्य है- प्रकृतिजन्य आपदा। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि जिन आपदाओं का सम्बन्ध सीधे-सीधे प्रकृति से जुड़ा हो, उसे प्राकृतिक आपदा कहेंगे। इसका क्षेत्र भी प्रकृति के तरह ही अतिवृहत् है। सम्प्रति इसे 'डिजास्टर' के नाम से जाना जाता है। आपदा-प्रबन्धन के नाम से इसका अध्ययन-अध्यापन भी कराया जाता है। इसके अन्तर्गत भूकम्प, बाढ़, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, समर्घ-महर्घ, पर्यावरण सम्बन्धित समस्यायें, उल्कापातादि, धूमकेतु, वृक्षों से सम्बन्धित, राष्ट्र एवं विश्व से सम्बन्धित नाना प्रकार की आपदायें आदि इत्यादि विषय आते हैं।

संहिता ज्योतिष में उक्त सभी विषयों को भूमिजन्य, आकाशजन्य और दिव्य से सम्बन्धित मुख्यत: तीन उत्पात - दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्ष उत्पातों में विभक्त किया है। आइए हम सब उसका विस्तृत अध्ययन करते हैं यहाँ इस इकाई में।

४.४ दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्ष उत्पात विवेचन

आपदाओं के बारे में आचार्य वशिष्ठ स्वग्रन्थ 'वशिष्ठ संहिता' में बताते हुए कहते हैं कि -

अन्यत्वं प्रकृते: यत्तदसावुत्पातसंज्ञकम्।।

अर्थात् प्रकृति का अन्यत्व अर्थात् विपरीत होने की उत्पात संज्ञा कही गयी है। प्रकृति के बदलने पर भूमिजन्य, आकाशीय और दिव्य, ये तीन प्रकार के उत्पात होते हैं। मनुष्यों में जब विनम्रता नहीं रहती, पाप करने लगते हैं। और जब पाप बहुत बढ़ जाता है तो इससे प्रकृति में उपद्रव होने लगता है, इसी उपद्रव को आचार्यों ने उत्पात संज्ञा दी है।

अधर्मत्वादसत्याच्च नास्तिक्यादतिलोभत:।

अनाचारन्नृणां नित्यमुपसर्ग: प्रजायते:।।

अधर्म से, असत्य से, नास्तिकता से, अति लोभ से, मनुष्यों के अनाचार से, नित्य ही उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

तद्वशास्त्रिविधोत्पाता जायन्ते शोकदुखदा:।

दिव्यान्तरिक्षाक्षितिजविकारा घोररूपिण:।।

उस उपद्रव वश तीन प्रकार के शोक और दु:ख देने वाले उत्पात उत्पन्न होते हैं। दिव्य, अन्तरिक्ष एवं भूमिजन्य भयंकर रूप वाले विकार कहे गये हैं।

ग्रहर्क्षजा केतवश्च उत्पाता दिव्यसंज्ञका:।

निर्घातपरिवेषोल्कापुरन्दरधनुध्र्वजा:।।

ग्रह नक्षत्रों से उत्पन्न और केतुओं से उत्पन्न विकार दिव्य संज्ञक कहे गये हैं। अर्थात् सूर्य आदि ग्रह और अश्विनी आदि नक्षत्रों के विकारयुक्त होने से जो उत्पात होता है, उसे दिव्य संज्ञा दी गयी है। निर्घात, परिवेश, उल्का, इन्द्रधनुष और ध्वज।

लोहितैरावतोष्टाश्वकबन्धपरिघादय:।

एवमाद्या महोत्पातास्त्वन्तरिक्षाहयास्त्वमी।।

लोहित, ऐरावत, ऊँट, अश्व, कबन्ध तथा परिघ आदि से उत्पन्न हुए बड़े उत्पातों को अन्तरिक्ष उत्पात कहा जाता है।

उत्पद्यते क्षितौ यच्च स्थावरं वाथ जंगमम्।

तदेकदेशिकं भौममुत्पातं परिकीर्तितम्।।

पृथ्वी के चलायमान होने से अथवा चर वस्तु के स्थिर एवं स्थिर वस्तु के चलायमान होने पर उसके एक भाग को भूमि सम्बन्धी उत्पात की संज्ञा दी गयी है।

भौमास्तु तुच्छफलदास्त्वन्तरिक्षास्तु मध्यमाः।

सम्पूर्णफलदा दिव्या वर्षादद्र्धात्तदर्द्धतः।।

भौम उत्पात तुच्छ अर्थात् स्वल्प फल देने वाले होते हैं। जबकि अन्तरिक्ष उत्पात मध्यम फल देते हैं। किन्तु दिव्य उत्पात सम्पूर्ण फल देते हैं। वह तीन महीने, छः महीने अथवा एक वर्ष में अवश्य प्राप्त हो जाते हैं।

भौमं शान्त्या शमं याति मार्दवं त्वन्तरिक्षजम्।

दिव्यं होमान्नगोभूमिदानैस्तत्कोटिहोमतः।।

भूमि सम्बन्धी उत्पात तो शान्ति से शमित अर्थात् नष्ट हो जाते हैं जबकि अन्तरिक्ष उत्पात मन्द पड़ जाते हैं अर्थात् कम हो जाते हैं। किन्तु दिव्य उत्पात हवन, अन्न, गाय, भूमि के दान से तथा करोड़ों हवन से।

महोपहाराद् रुद्रस्य गोदोहात्तत्पुरःसरम्।

अलंकृते क्षितितले यावत्क्षीरप्लवं भवेत्।।

भगवान रुद्र के अनेक प्रकार के पूजन से तथा उनके समक्ष गोदोहन से पृथ्वी का अलंकार तब तक करें जब तक दूध स्वतः बहने न लगे।

अपि दिव्यं शमं यान्ति किं पुनस्त्वितरद्वयम्।

अकृत्वा शान्तिकं राजा दुखाम्भोधौ निमज्जति।।

दिव्य उत्पात भी शमन हो जाते हैं। तो फिर इससे अतिरिक्त जो दो अर्थात् भूमि एवं अन्तरिक्ष उत्पात हैं। वे तो निश्चित ही शमित हो जायेंगे बिना शान्ति कर्म किए राजा इन उत्पातों के होने पर दुःख रूपीर समुद्र में डूब जाता है।

पुरे जनपदे कोशे वाहनेषु पुरोहिते।

स्त्रीपुत्रात्मनि भूपस्य पच्यते दैवमष्टभिः।।

पुर (नगर) में, जनपद (ग्राम), कोष (खजाना), वाहन, पुरोहित, स्त्री, पुत्र तथा स्वयं (राजा) में, इन आठ प्रार के दैव उत्पात के द्वारा राजा पीड़ित होता है।

हस्तैः षोडशभिः काय्र्यं चतुरस्त्रं समन्ततः।

मण्डपं याज्ञिकैर्वृक्षैरथवा वनदारुभिः।।

सोलह हाथ का चारों ओर से चैकोर मण्डप बनाना चाहिए। वह मण्डल याज्ञिक वृक्षों अथवा वन के वृक्षों द्वारा बनवाना चाहिए।

चतुर्द्वारसमायुक्तं तोरणाद्यैरलंकृतम्।

हस्तैश्चतुर्भिस्तन्मध्ये कुण्डं कार्यं समन्ततः।।

चार दरवाजों से युक्त तोरण आदि के द्वारा सुशोभित चारों ओर से चार हाथों के मध्य में कुण्ड बनाना चाहिए।

खातं हस्तचतुर्भिश्च वप्रत्रयसमन्वितम्।

षडंगुलोन्नतस्त्वाद्यो द्वादशाङ्गलविस्तृतः।।

चार हाथ प्रमाण से खात करे। जिसमें तीन ओर से मिट्टी की दीवार से युक्त करें। छः अंगुल ऊँचा तथा बारह अंगुल विस्तार बनावें।

दशाङ्गलोन्नतो मध्यो ह्यष्टाङ्गलसुविस्तृतः।

चतुर्दशाङ्गलोत्सेधश्चतुरंगुलविस्तृतः।।

मध्य में दस अंगुल ऊँचा और आठ अंगुल विस्तृत करे और चैहद अंगुल चैकोर तथा चार अंगुल विस्तृत करें।

तृतीयवप्रः कत्र्तव्यो योनिश्चैका तु पश्चिमे।

चतुर्दशाङ्गलैर्दीर्घा चोन्नता षोडशाङ्गलैः।।

तीसरी दीवार बनावें। और पश्चिम दिशा में एक योनि का निर्माण करें। चैदह अंगुल दीर्घ तथा सोलह अंगुल उन्नति करें।

हीनाधिका न कर्तव्या विस्तारः षड्भिरंगुलैः।

कुण्डस्य लक्षणं त्वेकं कोटिहोमे तु सर्वदा।।

कम या अधिक की वेदी नहीं बनानी चाहिए। इसका विस्तार छः अंगुल का होना चाहिए। यही एक कुण्ड का लक्षण कहा गया है। इसमें सदैव कोटि हवन किया जा सकता है।

ईशान्यां वेदिका कार्या सार्द्धहस्तप्रमाणतः।

उन्नता विस्तृता कार्या प्रागुदक्प्रवणा शुभा।।

डेढ़ हाथ के प्रमाण से ईशान कोण में वेदी का निर्माण करना चाहिए। यह वेदी ऊँची और विस्तृत करना चाहिए तथा पूरब और उत्तर दिशा में ढाल शुभ कहा गया है।

सर्वदेवमयी त्वाद्या शिवपूजापुरःसरम्।
ग्रहांस्तानर्चयेत्तत्र पूर्वोक्तविधिना ततः।।

सर्वप्रथम सर्वदेवमयी इस वेदिका में भगवान शंकर की पूजा के सहित पूर्वोक्त विधि के द्वारा ग्रहों का वहां पूजन करना चाहिए।

पलाशसमिदाज्यान्नैर्मुखान्तेऽष्टशतं पृथक्।
अघोरमन्त्रेण ततो ग्रहहोमं च कारयेत्।।

पलाश की लकड़ी, घी, अन्न के द्वारा अन्त में आठ सौ अलग-अलग अघोर मन्त्र के द्वारा पुनः ग्रह हवन को करना चाहिए।

तिलहोमं व्याहृतिभिर्घृतोक्तं जुहुयात्ततः।
द्वारे हि जापकैः स्वस्ववेदपारायणं क्रमात्।।

पुनः व्याहृतियों के द्वारा तिल का हवन तथा पुनः घी से हवन करना चाहिए। क्रमशः प्रत्येक द्वार पर जप करने वालों के द्वारा जो अपने-अपने वेद में पारंगत हो उनके द्वारा।

चमकं नमकं सूक्तपुरुषोक्तांगजापकैः।
होमं नवभिराचार्यैः कार्यं तद्ब्रह्मणा सह।।

चमक, नमक द्वारा तथा पुरुष सूक्त द्वारा कहे गये अंग जापकों के साथ नौ आचार्यों द्वारा तथा ब्रह्म के सहित हवन करना चाहिए।

शिवविष्णोः कथालापैर्दिनशेषं नयेत्ततः।
एवं यावत्कोटिहोमस्तावत्कार्यमतन्द्रिभिः।।

भगवान शंकर एवं विष्णु के कथा के कहने-सुनने में शेष दिन को बिता देना चाहिए। इस प्रकार आलस्यरहित होकर कोटि हवन को पूर्ण करना चाहिए।

नैवेद्यान्ते ततः पश्चाच्छान्तिवाचनपूर्वकम्।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुंजीत बन्धुभिः।।

नैवेद्य के अन्त में पुनः शान्ति वाचनपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करायें उसके पश्चात भाइयों के साथ स्वयं भी भोजन करें।

तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा लक्षहोममथापि वा।
काय्र्यं दोषानुसारेण वित्तशाठ्यविवर्जितः।।

उसका आधा अथवा उसका आधा अथवा लक्षहोम अर्थात् पचास लाख या पचीस लाख अथवा एक लाख दोष के अनुसार धन की कंजूसी न करता हुआ हवन कराना चाहिए।

होमान्ते दक्षिणां दद्याच्चतुर्विंशतिऋत्विजान्।

प्रतिद्विजमलंकारं सार्द्धनिष्कशतद्वयम्।।

हवन के अन्त में दक्षिणा देनी चाहिए। चैबीस ऋत्विजों को दक्षिणा देनी चाहिए। प्रत्येक ब्राह्मण को ढाई सौ निष्क तथा अलंकार से सम्मानित करें।

तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा दोषवित्तानुसारतः।

एवमेव यशःकामैर्नृपैः कुर्याच्च भक्तितः।।

उसका आधा अथवा उसका आधा अथवा दोष अथवा धन के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिए। इस प्रकार यश की कामना करने वाले राजा के द्वारा भक्तिपूर्वक यज्ञ सम्पन्न करना चाहिए।

ब्रीहिभिश्चायुरर्थी चेत्सर्वकामी तिलैश्च सः।

उक्ता साधारणा शान्तिरुत्पातानामतः परम्।।

आयु की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति को धान (चावल) से तथा सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति के लिए तिल से हवन करना चाहिए। यहां तक साधारण शान्ति को कहकर इसके आगे उत्पात नाम से शान्ति को कह रहे हैं।

उत्पातश्चैव शान्तिश्च वक्ष्यतेऽत्र पृथक् पृथक्।

मन्त्रद्रव्यमनुष्ठानं भक्त्या कार्यमतन्द्रितैः।।

उत्पात और शान्ति कर्मों को अब यहां अलग-अलग कहेंगे। मन्त्र, द्रव्य तथा अनुष्ठान को आलस्यरहित होता हुआ भक्तिपूर्वक करना चाहिए।

अर्चाः प्रनृत्यन्ति पतन्ति यद्वा चलन्ति रोदन्ति हसन्ति यत्र।

पचन्ति जल्पन्ति च चेष्टयन्ति स्थानान्तरं वाप्यथवा व्रजन्ति।।

जहाँ मूर्तियां नाचने लगें, गिरने लगें, चलने लगें, रोने लगें, हंसने लगें, पचाने लगें, बकबक करने लगें, चेष्टा करने लगें, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने लगें।

वमन्ति धूमानलरक्ततोयं स्नेहं दधिक्षीरसुराक्षतादि।

अंगारकार्पासतुषास्थिरोमकबन्धपाषाणकरोदनादि।।

वमन करने लगें, धुँआ, आग, रक्त, जल, तेल, दही, दूध, सुरा का अक्षत आदि अंगार, कपास, भूसी, हड्डी, रोआ, धड़ तथा पत्थर आदि का तथा रोना आदि।

एवमाद्या विकारास्ते दृश्यन्ते प्रतिमासु च।

राज्ञां जनपदानां च नाशाय द्राग्भवन्ति हि।।

इस प्रकार से और भी जो विकार प्रतिमा आदि में दिखाई पड़ें वह सब राजा और जनपद के विनाश के लिए होते हैं।

ऋषिब्रह्मजं पितृजं द्विजानामेव वै कृतम्।

शिवोत्थं लोकपालोत्थं शिशूनां नृपतेश्च तत्।।

ऋषि ब्रह्म से उत्पन्न, पितरों से उत्पन्न अथवा ब्राह्मणों के द्वारा किए गए शंकरजी से उत्पन्न, लोकपालों से उत्पन्न, बच्चों अथवा राजा के लिए वह।

लोकानां विष्णुसम्भूतं ग्रहोत्थं तत्पुरोधसाम्।

स्कन्दोत्थं मण्डलीकानां विशाखोक्तं क्षमाभुजाम्।।

संसार के लिए विष्णु से उत्पन्न, ग्रह से उत्पन्न अथवा पुरोहित के लिए स्कन्द से उत्पन्न, मण्डली के लिए उत्पात विशाखा में कहे गये राजाओं को।

गणेशोत्थं च भूपस्य व्यासोक्तं तच्च भूपतेः।

अन्योत्थं यद्विकारं तल्लोकाभावाय सर्वदा।।

और गणेश से उत्पन्न राजा के लिए तथा व्यास के द्वारा कहा गया राजा का अन्य से उत्पन्न जो विकार है। वह हमेशा लोक भय के लिए होता है।

फलपाको भवेदष्टमासैस्तद्वत्सरेण वा।

उत्पातानामथैतेषां शान्तिं वक्ष्ये प्रयत्नतः।।

उत्पातों के फल का परिणाम आठ महीने में अथवा एक वर्ष में होता है। अतएव उन उत्पातों के शान्ति को प्रयत्नपूर्वक मैं कहूँगा।

दृष्ट्वा दैवविकारं तद्दिनत्रयमुपोषितः।

पुरोहितः शुद्धमनाः शुद्धभावो जितेन्द्रियः।।

दैव विकार को देखकर तीन दिन प्रयत्न उपवास करके शुद्ध मन, शुद्ध भाव से जितेन्द्रिय, पुरोहित के सहित।

चतुर्थदिवसे गत्वा दीपैः सार्द्धं शिवालयम्।

सहस्रकलशस्नानं कुर्यात्संकल्पपूर्वकम्।।

चैथे दिन जाकर शिवालय में दीपक के सहित सहस्र कलशों से संकल्पपूर्वक स्नान कराना चाहिए।

तल्लगमन्त्रैर्गन्धाद्यैर्वस्त्रैर्देवं समर्चयेत्।

घृतोपहारवित्तन्नैर्भक्त्या चैव समर्चयेत्।।

उस लिंग मन्त्र के द्वारा गन्ध, वस्त्र आदि से महादेव का पूजन करना चाहिए। घी के उपहार, धन, अन्न आदि के द्वारा भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए।

ग्रहशान्त्यामुक्तकुण्डे स्थापयेश्च हुताशनम्।

पालाशसमिद्याज्यान्नैस्तल्लगैर्वेदमन्त्रकैः।।

ग्रह शान्ति, ऊपर कहे गये कुण्ड में अग्नि स्थापित करके पलाश, समिधा, घी, अन्न तथा लिंग वेद मन्त्रों के द्वारा।

अष्टोत्तरसहस्त्रं वा पृथगष्टोतरं शतम्।

तिलहोमादिकं सर्वं शेषं पूर्ववदाचरेत्।।

एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ तिल से हवन करे और शेष कर्म पूर्ववत करना चाहिए।

रात्रौ जागरणं कुर्यान्नृत्यगीतादिभिः सह।

आसप्तरात्रात्कृत्वैवमथवा पंचरात्रकम्।।

नाच-गाने आदि के साथ रात्रि में जागरण करे। यह सात रात्रि पर्यन्त अथवा पांच रात्रि पर्यन्त करके।

एवं यः कुरुते सम्यक् तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते।

अनग्नौ दृश्यते ज्वाला काष्ठयुक्तो न दीप्यते।।

जो इस प्रकार से ठीक ढंग से अनुष्ठान करता है वह सभी दोषों से मुक्त हो जाता है। बिना अग्नि के ज्वाला तो दिखाई दे और काष्ठयुक्त अग्नि प्रज्वलित न हो।

सन्धुक्षतोपि नृपतेः पीडाजनपदस्य च।

यस्मिन्पुरे जनपदे धूमोऽनग्नौ महद्रजः।।

राजा को पीड़ा होती है और उस जनपद के निवासियों को कष्ट होता है। जिसके पुर (नगर) या जनपद में अग्नि के बिना धूम अथवा दिन में बहुत बड़ी धूल दिखाई दे।

दिवान्धकारो वृक्षाणां राजनाशो भवेत्तदा।

रात्रावदर्शन व्यभ्रे तेषामग्निश्च निष्प्रभः।।

दिन में वृक्षों का अन्धकारयुक्त हो जाना तथा रात्रि के समय में बादल के बिना नक्षत्रों का अदर्शन और अग्नि का कान्तिरहित होना राजा का नाश करता है।

तदधीशस्य राष्टस्य दुःखशोकभयप्रदः।

शयनासनवस्त्राणां पादुकेभ्यो नृगात्रतः।।

उस स्थान का अधिपति अर्थात् राजा (राष्ट्राध्यक्ष) को दुःख, शोक एवं भय देता है। शयनाशन (चारपाई), वस्त्र तथा जूते आदि में मनुष्यों के शरीर से जलन उत्पन्न हो।

महिषोष्टाश्वगोहस्तिपशुकेशेषु गात्रतः।

धूमाग्निविस्फुलिंगा वा दृश्यन्ते च जलादिषु।।

भैसा, ऊँट, घोड़ा, गाय, हाथी, अन्य पशु के बालों में तथा शरीर में धुँआ अग्नि आदि के चिंगारी दिखाई पड़ें अथवा जल आदि में।

राजराष्ट्रविनाशः स्याच्छत्रुतोऽग्नेर्भयं भवेत्।

आयुधानि प्रज्वलन्ति कोशेभ्यो निर्गतानि च।।

राजा और राष्ट्र का विनाश होता है अथवा शत्रु से अग्नि का भय होता है। जब अस्त्र-शस्त्र चलते हुए दिखाई पड़ें अथवा अपने म्यान से स्वयं निकल जायें।

वेपमानानि यदि वा जल्पन्त्यथ रुदन्ति वा।

हसन्ति तुमुलं युद्धमत्यन्तनिकटं वदेत्।।

यदि अस्त्र-शस्त्र में कम्पन हो अथवा बकबक करे, रोने लगे, हंसने लगे, तो बहुत जल्दी घनघोर युद्ध होने वाला है। ऐसा कहना चाहिए।

उत्पातानामथोक्तानां शान्तिं वक्ष्ये विधानतः।

रुद्राभिषेकं रुद्रेण नैवेद्यान्तं प्रपूजयेत्।।

ऊपर कहे गये उत्पातों का विधानपूर्वक शान्ति कह रहा हूँ। शंकरजी का रुद्राभिषेक करके नैवेद्य अर्पित करके अन्त में विशेष रूप से पूजन करना चाहिए।

पूर्वोक्तलक्षणे कुण्डे स्थापयेच्च हुताशनम्।

मुखान्ते जुहुयादग्निं मन्त्रैरष्टसहस्त्रकम्।।

पहले कहे गये लक्षण वाले कुण्ड में अग्नि की स्थापना करके मुखान्त में अग्नि में आठ हजार मन्त्रों के द्वारा आहुति देनी चाहिए।

क्षीरवृक्षसमिश्च सर्षपैश्च पृथक् पृथक्।

तिलहोमं व्याहृतिभिर्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः।।

दूध वालें वृक्षों की समिधा से, तथा अलग-अलग सरसों से या तिल से व्याहृतियों के द्वारा होम करके पुनः ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

एवं यः कुरुते भक्त्या तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते।

ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः।।

जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक पूजन करता है वह इस दोष से मुक्त हो जाता है। ऋत्विजों को धन की कंजूसी छोड़कर दक्षिणा देनी चाहिए।

एकरात्रं त्रिरात्रं वा शेषं पूर्ववदाचरेत्।

अकस्मादेव वृक्षाणां शाखाभंगो भवेद्यदि।।

एक रात्रि या तीन रात्रि पर्यन्त शेष कर्मों को पूर्ववत करना चाहिए। अकस्मात् यदि वृक्षों की शाखा टूट जाये।

राष्ट्रभंग वदेच्छीघ्रं हसन्ते देशनाशनम्।

रुदितो व्याधितो भीतिः कम्पने ग्रामकम्पनम्।।

तो शीघ्र ही राष्ट्र का भंग कहना चाहिए। हंसने पर देश का नाश, रोने पर व्याधि का भय, तथा काँपने पर ग्राम का काँपना जानना चाहिए।

विस्फुलिंगेऽथवा धूमे ज्वलिते वह्नितो भयम्।

फलपुष्पोमे काले वृक्षाणं यदि शीघ्रतः।।

अग्नि के जलने पर चिंगारी अथवा धुँआ दिखाई दें तो अग्नि से भय होता है। यदि वृक्षों में फल या पुष्प निकलने के समय यह स्थिति दिखाई दें तो शीघ्र ही।

राष्ट्रविद्रावणं बालवृक्षेषु कुसुमेऽथवा।

शिशुहानिर्भवेत्क्षीरस्त्रवणे द्रव्यनाशनम्।।

राष्ट्र का विनाश होता है। बालवृक्ष अर्थात् पौधों में फूल निकला दिखाई दे तो बच्चों की हानि होती है। यदि दूध स्रवित हो रहा हो तो द्रव्य अर्थात् धन का विनाश होता है।

मद्ये वाहननाशः स्याच्छोणिते युद्धमादिशेत्।

स्नेहस्त्रावेऽनर्घभयं जलस्त्रावे महöयम्।।

मदिरा बह रही हो तो वाहन का नाश, यदि रक्त निकल रहा हो तो युद्ध होगा ऐसा कहना चाहिए। तेल के स्रवित होने पर महंगाई का भय जबकि जल के स्रवित होने पर बहुत बड़ा भय होता है।

क्षौद्रद्रावो भवेद्यत्र रोगशोकभयं भवेत्।

शुष्कवृक्षे चांकुरिते वृक्षहानिस्त्वनर्घता।।

छोटा घाव यदि दिखाई पड़ें तो रोग, शोक एवं भय जानना चाहिए। यदि सूखा वृक्ष अंकुरित हो गया हो तो वृक्ष की हानि अथवा महंगाई जाननी चाहिए।

अकस्माच्छोषिते वृक्षे तदेव फलमिष्यते।

पतिते स्वयमस्थाने भयं देवकृतं भवेत्।।

अकस्मात् वृक्ष के सूख जाने पर भी उसमें फल दिखाई पड़े अथवा बिना स्थान के स्वयं गिर पड़े तो देवकृत भय होता है।

जल्पने चलने वृक्षे राजराष्ट्रविनाशनम्।

कृत्वाभिषेकं वृक्षस्य यावच्छक्यं प्रयत्नतः।।

वृक्षों के जल्प (गप्प) करने पर या चलने पर राजा या राष्ट्र का विनाश हो जाता है। अतएव प्रयत्नपूर्वक यथासम्भव वृक्षों का अभिषेक करना चाहिए।

अर्चयेद्गन्धपुष्पस्त्रग्वस्त्रच्छत्रोपहारकैः।

तत्पश्चादष्टभिर्हस्तैश्चतुर्भिर्वाथ मण्डपम्।।

गन्ध, फूल, माला, वस्त्र, छाता तथा उपहार के द्वारा पूजन करना चाहिए। उसके बाद आठ हाथों से अथवा चार हाथों के प्रमाण से मण्डल का निर्माण करना चाहिए।

कृत्वाथ कुण्डं तन्मध्ये सम्यक्तत्पूर्ववत्ततः।

द्वादशकृत्वो नमकं चमकं च भवेदितः।।

उसके मध्य में कुण्ड बनाकर पूर्व की भाँति ठीक ढंग से बारह बार नमक और चमक से रूद्राभिषेक करना चाहिए।

पेटिकायां वस्त्रहानिस्तरुपीठे रिपोर्भयम्।

गृहोपकरणे स्थाने क्षिप्रं तस्करतो भयम्।।

पेटिका (बक्शे) में होने से वस्त्र की हानि, तरूपीठ में होने पर शत्रु का भय, घर के सामग्री में या स्थान में होने पर शीघ्र ही चोर का भय होता है।

शाकिन्यारामखलपूसस्यक्षेत्रे फलक्षयः।

पुरीषमन्दिरे गोष्ठे वृषचिकित्सारुजां भवेत्।।

शाकनी अर्थात् शाक वाले खेत में, बगीचे में, खलिहान में तथा फसल या धान वाले खेत में होने पर फल का नाश हो जाता है। शौचालय में या गाय के स्थान में अथवा बैल के स्थान में होने से

रोग उत्पन्न होता है।

तुल्यस्थानानि सर्वेषामुक्तराज्ञां च कथ्यते।
शिथिलीजायते यत्र ग्रामे जनपदे पुरे।।

सभी समान स्थानों में राजाओं के लिए कहा गया है। शिथिली जिस गाँव जनपद या नगर में उत्पन्न होती हैं।

चैत्ये देवालये सेतौ विपिने पर्वतेषु च।
नदीतीरे जले चाथ क्षुद्रदेवगृहेषु च।।

चैत्य (धर्मशाला), देवालय (मन्दिर), पुल, जंगल, पर्वत, नदी के किनारे अथवा जल अथवा छोटे देवताओं के घर में शिथिली होने पर।

अश्वालये गजर्गहे खरोष्टमृगपक्षिणाम्।
विद्यालये शस्त्रगृहे राज्योपकरणालये।।

घुड़साल में, हाथी के स्थान में, गदहा, ऊँट, मृग तथा पक्षियों के स्थान में, विद्यालय, शस्त्रागार में तथा राजा के राज्य की सामग्रियों के स्थान में।

दासीदासगृहाद्येषु तत्तद्वर्गविनाशनम्।
साधारणेन शान्त्यैव एते दोषा लयं ययुः।
तस्माच्छान्तिश्च कर्तव्या द्विजभोजनपूर्वकम्।।

नौकर चाकरों के घरों में होने पर उन-उन वर्गों का विनाश करता है। इस स्थानों में होने पर साधारण शान्ति के द्वारा ये सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। इसलिए शान्ति ब्राह्मण भोजनपूर्वक करनी चाहिए।

कुड्यांगे मस्तकांद्यंगे पतिते फलमुच्यते।
मस्तके राज्यनाशः स्याले कर्णे च भूषणम्।।

कुड्य अंग में, मस्तकादि के अंग पर गिरने से फल कहा जा रहा है। मस्तक पर गिरने से राज्य का नाश, ललाट तथा कान पर गिरने से आभूषण की प्राप्ति होती है।

वक्षःस्थले तु सौभाग्यं हृदि प्रीतिविवर्द्धनम्।
पुत्रलाभस्तु कुक्षौ स्यान्नाभौ कीर्तिविवर्द्धनम्।।

वक्षस्थल (छाती) पर गिरने से सौभाग्य की प्राप्ति, हृदय में गिरने पर आपस (पति-पत्नी) में प्रेम की वृद्धि, कोख पर गिरने से पुत्र का लाभ तथा नाभि पर गिरने से यश की वृद्धि होती है।

नेत्रयोर्मित्रलाभः स्यात्सुगन्धं नासिकोपरि।।

वक्त्रे तु भोजनं कण्ठे स्त्रीलाभः स्कन्धयोर्जयः।।

दोनों नेत्रों पर गिरने से मित्र का लाभ, नासिका पर गिरने से सुगन्ध की प्राप्ति, मुख पर गिरने से भोजन की प्राप्ति, कण्ठ में स्त्री का लाभ तथा दोनों कन्धों पर गिरने से जय की प्राप्ति होती है।

हस्ते तेजोविवृद्धिः स्यादर्थवृद्धिः करद्वयोः।

अर्थलाभस्तु पृष्ठे स्यात्पाश्र्वयोः सुहृदागमः।।

हाथ में गिरने पर तेज की वृद्धि, दोनों हाथों में होने से धन की वृद्धि, पीठ पर गिरने से अर्थ का लाभ तथा पाश्र्व (बगल) भाग में गिरने से मित्र का आगमन होता है।

देवता यत्र नृत्यंति पतंति प्रज्वलन्ति च।

मुहू रुदन्ति गायन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च।।

वमन्त्यग्रि तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयोजलम्।

अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं व्रजन्ति च।।

एवमाद्या हि दृश्यन्ते विकाराः प्रतिमासु च।

अब यहाँ कुछ आश्चर्य पूर्ण उत्पातों का वर्णन करते हुए आपके ज्ञान के लिए उनका फल कहते हैं।

जहाँ पर देवता (मूर्तियाँ) नाचते हैं। गिरते हैं और जलते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। वार-वार रोते हैं। गाते हैं तथा उनसे स्वेदबिन्दु (पसीना) निकलता है और हंसते हैं। तथा उनके मुख से अग्रि, धुआँ, तेल, रुधिर, दूध या जल गिरता है। वे अधोमुख दृष्टिगोचर होते हैं तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। इत्यादिक विकार जब स्थापित मूर्तियों में दृष्टिगोचर हो तो यह आपत्ति सूचक होता है अतः इसकी शान्ति करें।

गन्धर्वनगरं चैव दिवा नक्षत्रदर्शनम्।।

महोल्कापतनं काष्ठतृणरक्तप्रवर्षणम्।

गन्धर्वगेहे दिग्धूमं भूमिकम्पं दिवानिशि।।

आकाश में (गन्धर्व नगर) सुन्दर सुन्दर नगरों का दिखलाई पड़ना, दिन में तारों का दिखाई देना, उल्कापात (तारे टूटना) लकड़ी, तृण तथा खून की वृष्टि होना। आकाश में तथा दिशाओं में अकारण धूम दिखाई पड़ना। भूकम्प होना ये अशुभ सूचक हैं।

अनग्रौ च स्फुलिंगाश्च ज्वलनं च विनेन्धनम्।

निशीन्द्रचापमण्डूकशिखरं श्वेतवायसः।।

विना अग्रि के स्फुलिंग (चिनगारी), बिना ईन्धन की ज्वाला, रात्रि में इन्द्रधनुष

मेढक की चोटी, और सफेद काग का दिखाई पड़ना अमंगल सूचक होता है।

दृश्यन्ते विस्फुलिंगाश्च गोगजाश्वोष्ट्रगात्रतः।
जंतवो द्वित्रिशिरसो जायन्ते वा वियोनिषु।।

अन्वयः- गो, गज, अश्व, उष्ट्र, गात्रतः विस्फुलिंगाश्च दृश्यन्ते। द्वित्रि शिरसः जंतवः दृश्यन्ते वा वियोनिषु जायन्ते।

गाय, हाथी, घोड़े और ऊँट आदि जानवरों केर शरीर से चिनगारी निकलते देखा जायेगा दो तीन शिर वाले पशु दिखाई दे अथवा दूसरी योनि से दूसरा जीव (गाय से घोड़े आदि) उत्पन्न हों तो यह अमंगल सूचक होता है।

प्रतिसूर्याश्फचसृषुस्युर्दिक्षु युगपद्रवेः।
जम्बूकग्रामसंवासः केतूनां च प्रदर्शन्।।

अन्वयः-प्रतिसूर्याः, चतसृषु दिक्षु युगपदेव रवेः दर्शनम्। जंवूक ग्रामसंवासः, केतूनां प्रदर्शनम् च (अमंगलम्)।

दो सूर्य का दिखाई देना या एक साथ चारों दिशाओं में सूर्य का दर्शन होना। गाँव के अन्दर श्रृगाल का छिपना तथा पुच्छल तारों का दिखाई देना अमंगल सूचक है।

काकानामाकुलं रात्रौ कपोतानां दिवा यदि।
अकाले पुष्पिता, वृक्षा दृश्यन्ते फलिता यदि।।
कार्यं तच्छेदनं तत्र ततः शान्तिर्मनीषिभिः।
एवमाद्या महोत्पाता बहवः स्थाननाशदाः।।

अन्वयः-यदि रात्रौ काकानां, दिवा कपोतानां च आकुलं। वृक्षा अकाले पुष्पिता वा यदि फलिता दृश्यन्ते। तदा तत्र तच्छेदनं कार्यम् ततः मनीषिभिः शान्तिः कत्तव्याः। एवम् आद्या वहवः महोत्पाता स्थान नाशदाः दृश्यन्ते।

दिन में कबूतरों का और रात्रि में कौओं का व्याकुल होना भी अशुभ सूचक होता है। यदि असमय में बिना ऋतु के वृक्ष फूले या फले तो बुद्धिमान को चाहिए कि तुरन्त उसे काट कर उपद्रव.....

नारद संहिता में कथित -

गन्धर्व नगर का लक्षण -

गन्धर्वनगरं दिक्षु दृश्यतेऽनिष्टदं क्रमात्।

भूभुजां वा चमूनाथसेनापतिपुरोधसाम्।।

अन्वय:- दिक्षु गन्धर्व नगरं यदा दृश्यते तदा भूभुजां, चमूनाथ, सेनापति वा पुरोधसां कमात् अनिष्टदं भवति।

पूर्वादि दिशाओं में यदि गन्धर्वनगर दृष्टिगोचर हो तो राजा, सेनापति, मन्त्री और राज पुरोहित का क्रमशः अनष्टि होता है।।1।।

सित, रक्त, पीत कृष्णं विश्रादीनामनिष्टदम्।

रात्रौ गन्धर्वनगरं धराधीशविनाशनम्।।

अन्वयः-सित, रक्त, पीत, कृष्ण (कमात्) विप्रादीनां (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्राणां) अनिष्टदम् रात्रौ (यदा) गन्धर्वनगरं (दृश्यते) तदा धराधीश विनाशनं भवति।

सफेद, लाल, पीला और काले वर्णवाला गन्धर्वनगर क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रवर्ण के लिए अनिष्ट सूचक होता है। यदि गन्धर्वनगर रात्रि में देखा जाय तब राजा का विनाश होता है।

इन्द्रचापाग्रिधूमाभं सर्वेषामशुभप्रदम्।

चित्रवर्णं चित्ररूपं प्राकारध्वजतोरणम्।।

दृश्यते चेन्महायुद्धमन्योन्यं धरणीभुजाम्।।

अन्वयः- इन्द्रचाप, अग्रि, धूमाभं सर्वेषां अशुभप्रदम् भवति। चित्रवर्ण चित्ररूपं प्राकारध्वजतोरणम्। चेत् दृश्यते तदा धरणीभुजाम् अन्योन्यं युद्धं भवेत्।

इन्द्रचाप, अग्रि अथवा धूम की तरह यदि गन्धर्वनगर दिखाई दे तो सभी के लिए अनिष्ट सूचक होता है। चित्रवर्ण, चित्ररूप, किला, ध्वज या तोरण के आकार में दिखाई देने पर राजाओं में परस्पर युद्ध होता है।

प्रतिसूर्यलक्षण -

प्रतिसूर्यनिभ: स्निग्ध: सूर्य: पाश्र्वे शुभप्रद:।

वैडूर्यसदृशस्वच्छ: शुकोलवाऽपि सुभिक्षकृत्।।

अन्वयः-प्रतिसूर्यनिभः स्निग्धः सूर्यः पाश्र्वे शुभप्रदः भवति। वैडूर्य-सदृशः स्वच्छः अपि च, शुक्लो वा तदा सुभिक्षकृत् भवति।

कभी-कभी बादलों और सूर्यकिरणों के सांघातिक योग से सूर्य का दूसरा बिम्ब भी दृष्टिगोचर हो जाता है उसका दर्शन अनिष्ट सूचक होता है। उसका फल बतलाते हुए भगवान नारद जी

कहते हैं कि यदि स्निग्ध वर्ण का विकार रहित प्रतिसूर्य आगे-पीछे (पाश्र्व में) दिखलाई पड़े तो शुभ होता है।

पीताभो व्याधिदः कृष्णो मृत्युदो युद्धदारुणः।
माला चेत्प्रतिसूर्याणां शश्वत् चैर भयप्रदा।।

अन्वयः- पीताभः व्याधिदः, कृष्णः मृत्युदः युद्धदारुणः, प्रति-सूर्याणां माला (दृश्यते) चेत् तर्हि शश्वत् चैर भयप्रदा भवति।

पीला प्रतिसूर्य रोग देने वाला तथा काले वर्ण का प्रति सूर्य मृत्युकारक एवं दारुण युद्धकारक होता है। यदि प्रतिसूर्यो की माला दृष्टिगोचर हो तो निरन्तर चोरों का भय होता है।

1. प्रति सूर्यः द्वितीय सूर्यः (कभी-कभी ऐसी स्थिति आती है कि दो सूर्य दृष्टिगोचर होता है। इसे भ्रम कहा जाय या अन्य जो भी नामकरण किया जाय पर ऐसी स्थिति आती अवश्य है। इसे समझने के लिए अपनी एक आँख बन्द करके दूसरी आँख के ऊपर या नीचे के पलकों को थोड़ा हल्का दबाने से स्पष्ट ही ग्रह दो दिखाई पड़ने लगता है। इस तरह बादलों और सूर्य रश्मियों के पारस्परिक संघात से भी स्थिति पैदा होती है और सूर्य का दो बिम्ब परस्पर दृष्टिगोचर होने लगता है।

2. **वराहमिहिर भी कहते है -**

पीतो व्याधिं जनयत्य शोकरूपश्च शस्त्रकोपाय।
प्रतिसूर्याणां माला दस्युभयातंकनृपहन्त्रो।।

नारदसंहिता के अनुसार भूकम्प लक्षण -

भूभारखिन्ननागेन्द्रदीर्घनिःश्वाससम्भवः।
भूकम्पः सोऽपि जगतामशुभाय भवेत्तदा।।

अन्वयः- भूभारखिन्ननागेन्द्र दीर्घनिःश्वाससम्भवः भूकम्पः सोऽपि तदा जगताम् अशुभाय भवेत्। (जगताम् भूकम्पः अशुभं भवति) इति।

भूमि के भार से थक कर जब भगवान शेषनाग निःश्वास करते हैं तो भूकम्प होता है।

उक्त धारणा पुराणों के कथानकों से बनती है। किन्तु यह सर्वविदित है कि रासायनिक विविध प्रतिक्रियायें भूमिगर्भ में होती रहती है जिनके परिणामस्वरूप विविध खनिज पदार्थ हमें

उपलब्ध होते हैं। और जब कभी रासायनिक प्रतिक्रियाओं में विकृति आती है तो भूमि की उष्मा भूमि के परतों को तोड़ कर बाहर निकलती है और उसे हम ज्वालामुखी के नाम से पुकारते हैं जिसके कारण भूकम्प होता है।

यामक्रमेण भूकम्पो द्विजातीनामनिष्टदः।
अनिष्टदो क्षितीशानां सन्ध्ययोरुभयोरपि।।

अन्वयः-द्विजातीनां यामकमेण भूकम्पः इष्टदो भवति, उभयोऽपि संध्ययोः क्षितीशानाम् अनिष्टदो भवति।

याम कम से ब्राह्मणादि वर्णों के लिए भूकम्प अशुभ फलदायक होता है। जैसे-प्रथम पहर में ब्राह्मणों को, द्वितीय में क्षत्रियों को, तृतीय में वैश्यों को और चैथे पहर में शूद्रों को अशुभ फलदायक भूकम्प होता है। यदि दोनों सन्धियों में भूकम्प हो तो राजाओं को कष्ट होता है।

अर्यमाद्यानिचत्वारि दस्त्रेन्द्वदिति भानि च।
वायव्यमण्डलं त्वेतदस्मिन्कम्पो भवेद्यदि।।
नृपसस्य-वणिग्वेश्याशिल्पवृष्टिविनाशदः।

अन्वयः-अर्यमा आद्यानि चत्वारि दस्त्र, इन्दु, अदिति भानि च वायव्यमण्डलं भवति एतस्मिन्भूकम्पौ यदिभवेत् तदा नृप-सस्य-वणिक्-वेश्या, शिल्प, वृष्टि विनाशदो भवति।

उत्तराफाल्गुनी से चार नक्षत्र (उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती) अश्विनी, मृगशिर्ष और पुनर्वसु इन नक्षत्रों को 'वायव्यमण्डल' कहते हैं। वायव्यमण्डल में भूकम्प होने से, राजा, धान्य, व्यापारी, वेश्या, शिल्पज्ञ और वर्षा का विनाश होता है।

पुष्यद्विदैवभरणी पितृभाग्यानलाऽजपात्।।
आग्नेयमण्डलं त्वेतदस्मिन्कम्पोभवेद्यदि।
नृपवृष्ट्यर्घनाशाय हन्ति शाम्बरटंकणान्।।

अन्वयः-पुष्य, द्विदैव, भरणी, पितृ, भाग्य, अनल, अजपात् आग्नेयमण्डलं एतस्मिन्यदि कम्पो भवेत् तदा नृप, वृष्टि, अर्घनाशाय भवति तथा शांवर (शाम्भर) टकणान् अपि हन्ति।

पुष्य, विशाखा, भरणी, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, कृत्तिका, पूर्वाभाद्रपदा ये नक्षत्र 'अग्निमंडल' में आते हैं। इनमें भूकंप होने से राजा का विनाश, अवर्षण, महँगाई रहे तथा शांभर नमक और सुहागा इत्यादि वस्तु महँगा रहे।

अभिजिद्धातृ-वैश्वेन्द्रवसुवैष्णवमैत्रभम्।
वासवं मण्डलं त्वेतदस्मिन् कम्पो भवेद्यदि।।
राजनाशाय कोपाय हन्ति माहेयदर्दुरान्।

अन्वयः-अभिजित्, धातृ, वैश्व, इन्द्र, वसु, वैष्णव, मैत्रभम् एते वासवमंडलसंज्ञकः एतस्मिन् यदि कंपो भवेत् तदा राजनाशाय, कोपाय च भवति, माहेय दर्दुरान् च हन्ति।

अभिजित्, रोहिणी, उत्तराषाढ़, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, श्रवण, और अनुराधा ये नक्षत्र 'वासवमंडल' के हैं। इनमें भूमिकंप होने से राजा का नाश हो तथा राजाओं में परस्पर वैर बढ़े, माहेय तथा दर्दुर देश का नाश होता है।

मूलाहिर्बुध्न्यवरुणाः पौष्णमाद्राहिभानि च।।
वारुणं मण्डलं त्वेतदस्मिन् कम्पो भवेद्यदि।
राजनाशकरोहन्ति पौण्ड्रचीनपुलिन्दकान्।।

अन्वयः- मूल, अहिर्बुध्न्य, वरुण, पौष्णम, आद्रा, अहिभानि च एते वारुणमण्डलं, एतस्मिन् यदि कम्पो भवेत् तदा राजनाशकरः पौण्ड्र, चीन पुलिन्दकान् च हन्ति।

मूल, उत्तराभाद्रपद, शतभिषा, रेवती, आर्द्रा और आश्लेषा ये नक्षत्र 'वरूणमण्डल' के हैं। इनमें भूकंप होने से राजा का नाश होता है तथा पौण्ड्र, चीन और पुलिन्द देशों का नाश होता है।

प्रायेण निखिलोत्पाताः क्षितीशानामनिष्टदाः।
षड्भिर्मासैश्च भूकंपो द्वाम्यां दाहफलप्रदः।।
अनुक्तः पंचभिर्मासैस्तदानीं फलदं रजः।।

अन्वयः-प्रायेण निखिलोत्पाताः अनिष्टदा भवन्ति। षड्भिः मासैश्च भूकम्पः फलं भवति द्वाम्यां मासाभ्यां दाह फलप्रदो भवति।। पंचभिः मासैः अनुक्तं रजः उत्पातानां च फलं भवति।

प्रायः सभी उत्पात विशेषकर राजाओं को अशुभ कहा गया है। भूकंप का फल 6 महीने में होता है और दो महीने में दिग्दाह का फल होता है। रज तथा अन्य उत्पात का फल पाँच महीने में प्राप्त होता है।

बोध प्रश्न -

1. प्रकृति के बदलने पर कौन सा उत्पात उत्पन्न होता है।

क. दिव्य ख. भौम ग.अन्तरिक्ष घ.सभी

2. ग्रहनक्षत्रों से उत्पन्न उत्पात को क्या कहते है।

क. दिव्य ख. भौम ग.अन्तरिक्ष घ.कोई नहीं

3. अश्व एवं ऊँट से उत्पन्न उत्पात किस श्रेणी में आता है।

क. दिव्य ख. भौम ग.अन्तरिक्ष घ.आपदा

4. पृथ्वी से सम्बन्धित उत्पात कौन सा है।

क. दिव्य ख. भौम ग.अन्तरिक्ष घ.सभी

5. निम्न में वरूण मण्डल के नक्षत्र है।

क. अश्विनी ख. उ0फा0 ग. रेवती घ. कोई नहीं

6. भूकम्प का फल कितने मास में मिलता है।

क.४ ख.५ ग. ८ घ. ६

४.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि प्राकृतिक आपदा से तात्पर्य है- प्रकृतिजन्य आपदा। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि जिन आपदाओं का सम्बन्ध सीधे-सीधे प्रकृति से जुड़ा हो, उसे प्राकृतिक आपदा कहेंगे। इसका क्षेत्र भी प्रकृति के तरह ही अतिवृहत् है। सम्प्रति इसे 'डिजास्टर' के नाम से जाना जाता है। आपदा-प्रबन्धन के नाम से इसका अध्ययन-अध्यापन भी कराया जाता है। इसके अन्तर्गत भूकम्प, बाढ़, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, पर्यावरण सम्बन्धित समस्यायें, उल्कापातादि, धूमकेतु, वृक्षों से सम्बन्धित, राष्ट्र एवं विश्व से सम्बन्धित नाना प्रकार की आपदायें आदि इत्यादि विषय आते हैं। संहिता ज्योतिष में उक्त सभी विषयों को मुख्यत: तीन उत्पात - दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्ष उत्पातों में विभक्त किया है। आपदाओं के बारे में आचार्य वशिष्ठ स्वग्रन्थ 'वशिष्ठ संहिता' में बताते हुए कहते हैं कि - प्रकृति का अन्यत्व अर्थात् विपरीत होने की उत्पात संज्ञा कही गयी है। प्रकृति के बदलने पर भूमिजन्य, आकाशीय और दिव्य, ये तीन प्रकार के उत्पात होते हैं। मनुष्यों में जब विनम्रता नहीं रहती, पाप करने लगते हैं। और जब पाप बहुत बढ़ जाता है तो इससे प्रकृति में उपद्रव होने लगता है, इसी उपद्रव को आचार्यों ने उत्पात संज्ञा दी है। अधर्म से, असत्य से, नास्तिकता से, अति लोभ से, मनुष्यों के अनाचार से, नित्य ही उपद्रव उत्पन्न होते हैं। उस उपद्रव वश तीन प्रकार के शोक और दुःख देने वाले उत्पात उत्पन्न होते हैं। दिव्य,

अन्तरिक्ष एवं भूमिजन्य भयंकर रूप वाले विकार कहे गये हैं।ग्रह नक्षत्रों से उत्पन्न और केतुओं से उत्पन्न विकार दिव्य संज्ञक कहे गये हैं। अर्थात् सूर्य आदि ग्रह और अश्विनी आदि नक्षत्रों के विकारयुक्त होने से जो उत्पात होता है, उसे दिव्य संज्ञा दी गयी है। निर्घात, परिवेश, उल्का, इन्द्रधनुष और ध्वज। लोहित, ऐरावत, ऊँट, अश्व, कबन्ध तथा परिघ आदि से उत्पन्न हुए बड़े उत्पातों को अन्तरिक्ष उत्पात कहा जाता है। पृथ्वी के चलायमान होने से अथवा चर वस्तु के स्थिर एवं स्थिर वस्तु के चलायमान होने पर उसके एक भाग को भूमि सम्बन्धी उत्पात की संज्ञा दी गयी है। भौम उत्पात तुच्छ अर्थात् स्वल्प फल देने वाले होते हैं। जबकि अन्तरिक्ष उत्पात मध्यम फल देते हैं। किन्तु दिव्य उत्पात सम्पूर्ण फल देते हैं। वह तीन महीने, छः महीने अथवा एक वर्ष में अवश्य प्राप्त हो जाते हैं।

४.६ पारिभाषिक शब्दावली

प्राकृतिक – प्रकृति से जुड़ा

अतिवृष्टि - अत्यधिक वर्षा

भूकम्प – पृथ्वी का कम्पन

अनावृष्टि – अत्यल्प वर्षा

दिशा – प्राच्यादि १० दिशायें होती है।

दिव्य – प्रधान तीन उत्पातों में से एक

अन्तरिक्ष – प्रधान तीन उत्पातों में एक

भौम - प्रधान तीन उत्पातों में एक

४.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. क
3. ग
4. ख
5. ग
6. घ

४.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वशिष्ठ संहिता – महात्मा वशिष्ठ, टीककार – प्रोफेसर गिरिजाशंकर शास्त्री
2. वृहत्संहिता – टीकाकार – पं. अच्युतानन्द झा
3. नारदसंहिता – टीकाकार – पं. राजजन्म मिश्र

४.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. नारद संहिता
2. भृगु संहिता
3. वृहत्संहिता

४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राकृतिक आपदा से आप क्या समझते है?
2. दिव्य उत्पात का वर्णन कीजिये।
3. वशिष्ठ संहिता के अनुसार भौमोत्पात का उल्लेख कीजिये।
4. अन्तरिक्ष उत्पात का विस्तृत वर्णन कीजिये।
5. नारद संहिता के अनुसार भूकम्प का लक्षण लिखिये।

इकाई - ५ दकार्गल विचार

इकाई की संरचना

५.१. प्रस्तावना
५.२. उद्देश्य
५.३. दकार्गल परिचय
५.४. दकार्गल विचार
५.५. सारांश
५.६. पारिभाषिक शब्दावली
५.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
५.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
५.९. सहायक पाठ्य सामग्री
५.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

५.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-604 के द्वितीय खण्ड की पाँचवी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – दकार्गल विचार। इससे पूर्व आप सभी ने प्राकृतिक आपदाओं का अध्ययन कर लिया है। अब आप दकार्गल का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

दकार्गल किसे कहते है? उसके अन्तर्गत कौन-कौन से विषयों का समावेश है? उसका स्वरूप एवं महत्व क्या है ? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे।

आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े दकार्गल से सम्बन्धित विषयों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

५.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि दकार्गल किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे दकार्गल विधि क्या है।
- दकार्गल के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- दकार्गल के विभिन्न प्रकारों को जान लेंगे।
- दकार्गल की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

५.३. दकार्गल परिचय

संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत दकार्गल अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं चराचर जगत् से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान है। दकार्गल का सामान्य अर्थ है – भूमिगत जल। यद्यपि यह एक परीक्षण जन्य ज्ञान है कि भूमि पर कहाँ, कितना और कैसा जल मिलेगा? यह परीक्षण ज्योतिष शास्त्र में कथित दकार्गल ज्ञान से प्राप्त करना सम्भव है। आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ वृहत्संहिता में दकार्गल के लिए एक स्वतन्त्र अध्याय का ही प्रतिपादन किया है। अत: आइए हम सभी उसका ज्ञान प्राप्त करते है।

आचार्य वराहमिहिर ने सर्वप्रथम दकार्गल का प्रयोजन बताते हुए कहा है कि -

दकार्गल का प्रयोजन-

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धि।
पुंसां यथाङ्गषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्था।।
एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषांघ।
नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेङ्ग।।

जिसका ज्ञान होने पर भूमिगत ज्ञान प्राप्त होता है, उस धर्म और यश को देने वाले 'दकार्गल' को कहते हैं। मनुष्यों के अंग में नाड़ियाँ होती हैं, उसी तरह भूमि में भी ऊँची-नीची शिरा आकाश से केवल एक स्वाद वाला जल पृथ्वी पर गिरता है; किन्तु वही जल विशेषता से तत्तत् स्थानों में अनेक प्रकार के रस और स्वाद वाला हो, जल की तरह भूमि के वर्ण और रस के समान ही जल के भी रस और वर्ण सिद्ध होती है। भूमि, वर्ण और रस का परीक्षण-पूर्वक जल के रस और स्वाद का परीक्षाण् चाहिये।

सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टमिष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम्।।

भूमिगत जल ज्ञान के लिए हमें शिराओं का ज्ञान होना परमावश्यक है। अत: पहले शिराओं का समझते हैं।

शिराओं के नाम -

पुरुहूतानलयमनिर्ऋतिवरुणपवनेन्दुशंङ्करा देवा:।
विज्ञातव्या: क्रमश: प्राच्याद्यानां दिशां पतय:।
दिक्पतिसंज्ञा च शिरा नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी।
एताभ्योऽन्या: शतशो विनि: सृता नामभि: प्रथिता:।।
पातालादूर्ध्वशिरा शुभा चतुर्दिक्षु संस्थिता याश्च।
कोणदिगुत्था न शुभा: शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये।

पूर्व आदि आठ दिशाओं के क्रम से इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, चन्द्र और शिव स्वामी होते हैं। इन आठ दिक्पतियों के नाम से आठ (ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या इत्यादि) ही शिरायें भी प्रसिद्ध हैं। इन आठ शिराओं के मध्य में महाशिरा नाम वाली नवमी शिरा है। इन नव शिराओं के अतिरिक्त अन्य भी सैकड़ों शिरायें निकली हैं, जो अपने-अपने नाम से प्रसिद्ध हैं। पाताल से ऊपर की

तरफ जो शिरा निकली है, वह और पूर्व आदि चारों दिशाओं में स्थित शिरायें शुभ तथा अग्निकोण आदि विदिशाओं में स्थित शिरायें अशुभ होती हैं। अतः इसके बाद शिराओं के लक्षण कहते हैं।

शिरा ज्ञान -

यदि वेतसोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात्।
सार्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र।।
चिहमपि चार्धपुरुषे मण्डूकः पाण्डुरोऽथ मृत् पीता।
पुटभेदकश्च तस्मिन् पाषाणो भवति तोयमधः।।

यदि जलरहित देश में वेदमजनूँ का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में डेढ़ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। भुजा ऊपर की तरफ खड़ी करने से पुरुष की जितनी लम्बाई हो, वह एक पुरुषप्रमाण (120 अंगुल) यहाँ पर ग्रहण कर इस खात में पश्चिमा शिरा बहती है। यहाँ पर खोदने के समय कुछ चिन्ह जैसे-आधा पुरुषप्रमाणतुल्य खोदने पर पाण्डु वर्ण का मेढ़क, उसके नीचे पत्थर और पत्थर के नीचे जल मिलता है।

निर्जले वेतसं दृष्ट्वा तस्माद्वृक्षादपि त्रयम्।
पश्चिमायां दिशि ज्ञेयमधः सार्धेन वै जलम्।।
नरोऽत्र षष्टिद्र्विगुणा चांगुलानां प्रकीर्तितः।
तत्र खात्वाऽर्धपुरुषं भेकः पाण्डुरवर्णकः।।
मृत् पीता पुटभेदश्च पाषाणोऽधस्ततो जलम्।
शिरा पश्चिमदिक्स्थात्र वहतीति विनिर्दिशेत्।।

अन्य कथन

जम्ब्वाश्चोदग्घस्तैस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा।
मृल्लोहगन्धिका पाण्डुरा च पुरुषेऽत्र मण्डूकः।।

यदि जलरहित देश में जामुन का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ उत्तर दिशा पुरुषतुल्य नीचे पूर्व शिरा होती है। वहाँ पर भी खोदने के समय में कुछ चिन्ह निम्नलिखित हैं; जैसे-एक पुरुषप्रमाणतुल्य नीचे लोहे के समान गन्ध वाली मिट्टी उसके कुछ सफेद मिट्टी और उसके नीचे मेढ़क निकलता है।

अन्य कथन

जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत् समीपस्थः।
तस्माद्दक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु।।

अर्धपुरुषे च मत्स्यः पारावतसन्निभश्च पाषाणः।
मृवति चात्र नीला दीर्घं कालं च बहु तोयम्।।

जामुन के वृक्ष से पूर्व की तरफ समीप में ही बाँबी हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में दो पुरुष नीचे मधुर जल मिलता है। आधा पुरुषप्रमाण नीचे मछली और उसके नीचे कबूतर केर समान रंग वाला पत्थर निकलता है तथा इस खात में नील वर्ण की मिट्टी होती है और चिर काल तक अधिक जल होता है।

जम्बूवृक्ष से पूर्वभाग में वल्मीको दिखलाई पड़ने पर -

तरोर्दक्षिणतो हस्तांस्त्रीस्त्यक्त्वाऽधो जलं वदेत्।।
नरद्वयेऽर्धपुरुषो मत्स्योऽश्मा पक्षिसन्निभः।
ततोऽपि मृत्तिका नीला ततो मृष्टं जलं वदेत्।।
पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे।
पुरुषे सितोऽहिरश्मा...नोपमोऽधः शिरा सुजला।।

जलरहित देश में गूलर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में ढाई पुरुष नीचे सुन्दर जल वाली शिरा होती है। यहाँ पर भी खोदने के समय कुछ चिन्ह मिलते हैं; जैसे-आधा पुरुष खोदने पर सफेद सर्प, उसके नीचे काला पत्थर और उसके नीचे सुन्दर जल वाली शिरा निकलती है।

उदगर्जुनस्य दृश्यो वल्मीको यदि ततोऽर्जुनाद्धस्तैः।
त्रिभिरम्बु भवति पुरुषैस्त्रिभिरर्धसमन्वितैः पश्चात्।।
श्वेता गोधार्धनरे पुरुषे मृद्धूसरा ततः कृष्णा।
पीता सिता ससिकता ततो जलं निर्दिशेदमितम्।।

अर्जुन वृक्ष से तीन हाथ उत्तर दिशा में बाँबी हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम में साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर भी खोदने पर कुछ चिन्ह मिलते है जैसे-आधा पुरुष नीचे गोधा (गोह), एक पुरुषतुल्य नीचे काली-सफेद मिट्टी, नीचे काली मिट्टी, उसके नीचे पीली मिट्टी, उसके नीचे सफेद रेत और उसके नीचे अधिक जल निकलता है।

वल्मीकोपचितायां निर्गुण्ड्यां दक्षिणेन कथितकरैः।
पुरुषद्वये सपादे स्वादु जलं भवति चाशोष्यम्।।
रोहितमत्स्योऽर्धनरे मृत् कपिला पाण्डुरा ततः परतः।
सिकता सशर्कराऽथ क्रमेण परतो भवत्यम्भः।।

वल्मीकयुक्त निर्गुण्डी (सिन्दुवार वृक्ष 'सिन्दुवारेन्द्रसुरसौ निर्गुण्डीन्द्राणिकेत्य त्यमरः) हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में सवा दो पुरुष नीचे कभी नहीं सूखने वाला जल होता है। यहाँ पर खोदने के समय वक्ष्यमाण चिन्ह मिलते हैं-

आधा पुरुष नीचे लाल मछली, उसके नीचे पीली मिट्टी, उसके नीचे सफेद मिट्टी, उसके नीचे पत्थर के सूक्ष्म कणों से समन्वित रेत और उसके नीचे जल की प्राप्ति होती है।।

पूर्वेण यदि बदर्या वल्मीको दृश्यते जलं पश्चात्।
पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं श्वेता गृहगोधिकार्द्धनरे।।

यदि वेर के वृक्ष से पूर्व दिशा में वल्मीक हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में तीन पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। यहाँ पर आधा पुरुष नीचे सफेद छिपकिली निकलती है।

पूर्वभागं बदर्याश्चेद्वल्मीको दृश्यते जलम्।
पश्चातद्धस्तत्रये वाच्यं खाते तु पुरुषत्रये।।
अधःखातेऽर्धपुरुषे दृश्यते गृहगोधिका।
श्वेतवर्णा ततोऽधःस्थं जलं भवति निर्मलम्।।
सपलाशा बदरी चेद् दिश्यपरस्यां ततो जलं भवति।
पुरुषत्रये सपादे पुरुषेऽत्र च दुण्डुभश्चहम्।।

जलरहित देश में पलाश (ढाक) के वृक्ष से युक्त वेर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में सवा तीन पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे विषरहित सर्प मिलता है।

पलाशयुक्ता बदरी यत्र दृश्या ततोऽपरे।
हस्तत्रयादधस्तोयं सपादे पुरुषत्रये।।
नरे तु दुण्डुभः सर्पो निर्विषश्चहमेव च।
अधस्तोयं च सुस्वादु दीर्घकालं प्रवाहितम्।
बिल्वोदुम्बरयोगे विहाय हस्तत्रयं तु याम्येन।
पुरुषस्त्रिभिरम्बु भवेत् कृष्णोऽर्द्धनरे च मण्डूकः।।

जहाँ वेल के वृक्ष से युक्त गूलर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में तीन पुरुष नीचे जल की स्थिति होती है। यहाँ पर आधा पुरुष नीचे कृष्ण ..... निकलता है।

काकोदुम्बरिकायां वल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन्।
पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था वहति सा च।।
आपाण्डुपीतिका मृरसवर्णश्च भवति पाषाणः।

पुरुषार्धे कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति।।

यदि काकोदुम्बरिका वृक्ष (कटुम्बरि = 'काकोदुम्बरिका फल्गुर्मलपूर्ज त्यमरः) के समीप वल्मीक हो तो उस वल्मीक के सवा तीन पुरुष नीचे पश्चिम में बहने वाली शिरा निकलती है। यहाँ पर खोदने के समय सफेद और ..... निकलती है। उसके नीचे सफेद पत्थर और आधा पुरुष नीचे सफेद चूहा दिखता है।

जलपरिहीने देशे वृक्षः कम्पिल्लको यदा दृश्यः।
प्राच्यां हस्तत्रितये वहति शिरा दक्षिणा प्रथमम्।।
मृन्नीलोत्पलवर्णा कापोता दृश्यते ततस्तस्मिन्।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यकः पयोऽल्पं च सक्षारम्।।

जलरहित देश में कम्पिल्ल वृक्ष (कपिल = कवीला) दिखाई दे तो उससे तीन हाथ पूर्व दिशा में सवा तीन पुरुष नीचे दक्षिण शिरा बहती है। यहाँ पर खोदने के समय पहले नील कमल के समान रंग वाली मिट्टी और उसके नीचे कबूतर के रंग की मिट्टी दिखाई देती है तथा एक हाथ नीचे बकरे के समान गन्ध वाली मछली और उसके नीचे खारा जल निकलता है।

निर्जले यत्र कम्पिल्लो दृश्यस्तस्मात् करत्रये।
प्राच्यां त्रिभिर्नरैर्वारि सा भवेद् दक्षिणा शिरा।।
अधो नीलोत्पलाभासा मृत् कापोतप्रभा क्रमात्।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यो जलमल्पमशोभनम्।।

अन्य कथन

शोणाकतरोरपरोत्तरे शिरा द्वौ करावतिक्रम्य।
कुमुदा नाम शिरा सा पुरुषत्रयवाहिनी भवति।।

जलरहित देश में शोणाक (सरिवन) वृक्ष दिखाई दे तो उससे दो हाथ व ..... कोण में तीन पुरुष नीचे 'कुमुदा' नाम की शिरा होती है।

अन्य कथन

आसन्नो वल्मीको दक्षिणपार्श्वे विभीतकस्य यदि।
अध्यर्धे भवति शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम्।।

यदि विभीतक (बहेड़ा) वृक्ष के समीप दक्षिण दिशा मेंर वल्मीक दिखई दे तो उस वृक्ष से दो हाथ पूर्व डेढ़ पुरुष नीचे शिरा होती है।

विभीतकस्य याम्यायां वल्मीको यदि दृश्यते।

करद्वयान्तरे पूर्वे सार्धे च पुरुषे जलम्।।

अन्य कथन

तस्यैव पश्चिमायां दिशि वल्मीको यदा भवेद्धस्ते।
तत्रोदग् भवति शिरा चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषौः।
श्वेतो विश्वम्भरकः प्रथमे पुरुषे तु कुङ्कुमाभोऽश्मा।
अपरस्यां दिशि च शिरा नश्यति वर्षत्रयेऽतीते।

यदि बहेड़े के वृक्ष से पश्चिम दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से ..... साढ़े चार पुरुष नीचे शिरा होती है। यहाँ पर खोदने के समय एक पुरुष ..... का विश्वम्भरक (प्राणिविशेष) दिखाई देता है। उसके नीचे केशर के रंग ..... और उसके नीचे पश्चिम दिशा को बहने वाली शिरा निकलती है; परन्तु यह... वर्ष बाद नष्ट हो जाती है अर्थात् जल नष्ट हो जाता है।

अन्य कथन

सकुशः सित ऐशान्यां वल्मीको यत्र कोविदारस्य।
मध्ये तयोर्नैरर्धपंचमैस्तोयमक्षोभ्यम्।।
प्रथमे पुरुषे भुजगः कमलोदरसन्निभो मही रक्ता।
कुरुविन्दः पाषाणश्चहान्येतानि वाच्यानि।।

जहाँ पर कोविदारक (छितिवन = सप्तपर्ण) वृक्ष के ईशान कोण में कुशायुक्त श्वेत वल्मीक हो, वहाँ पर सप्तपर्ण वृक्ष और वल्मीक के मध्य में साढ़े पाँच पुरुष नीचे अधिक जल होता है। यहाँ पर खोदने के समय एक पुरुष नीचे कमलपुष्प के मध्य के समान रंग का सर्प, उसके नीचे लाल वर्ण की भूमि और उसके नीचे कुरुविन्द नामक पत्थर निकलता है। ये सभी चिन्ह यहाँ पर कहने चाहिये।

अन्य कथन

यदि भवति सप्तपर्णो वल्मीकवृतस्तदुत्तरे तोयम्।
वाच्यं पुरुषैः पंचभिरत्रापि भवन्ति चिन्हानि।।
पुरुषार्धे मण्डूको हरितो हरितालसन्निभा भूश्च।
पाषाणोऽभ्रनिकाशः सौम्या च शिरा शुभाम्बुवहा।।

यदि वल्मीक से युक्त सप्तपर्ण वृक्ष हो तो उससे एक हाथ उत्तर पाँच पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। जहाँ पर भी वक्ष्यमाण चिन्ह मिलते हैं; जैसे-आधा पुरुष नीचे हरा मेढ़क, उसके बाद हरताल के समान पीली भूमि, उसके नीचे मेघ के समान काला पत्थर और उसके नीचे मधुर जल वाली

उत्तरवाहिनी शिरा निकलती है।

भुजंगगृहसंयुक्तो यत्र स्यात् सप्तपर्णकः।
ततः सौम्ये हस्तमात्रात् पंचभिः पुरुषैरधः।।
वाच्यं जलं नरार्धे तु मण्डूको हरितो भवेत्।
हरितालनिभा भूश्च मेघाभोऽश्मा ततः शिरा।।
उत्तरा सुजला ज्ञेया दीर्घा मृष्टाम्बुवाहिनी।।

अन्य कथन

सर्वेषां वृक्षाणामधः स्थितो दर्दुरो यदा दृश्यः।
तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः।
पुरुषे तु भवति नकुलो नीला मृत्पीतिका ततः श्वेता।
दर्दुरसमानरूपः पाषाणो दृश्यते चात्र।।

जिस किसी वृक्ष के मूल में मेढ़क दिखाई दे, उस वृक्ष से एक हाथ आगे उत्तर दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर खोदने के समय एक पुरुष नीचे नेवला, उसके नीचे क्रम से नीली, पीली तथा सफेद मिट्टी, उसके नीचे मेढ़क के सदृश पत्थर और उसके नीचे जल निकलता है।

तरूणां यत्र सर्वेषामधः स्थो दर्दुरो भवेत्।
वृक्षादुदग्दिशि जलं हस्तात् सार्धैर्नरैरधः।।
चतुर्भिः पुरुषे खाते नकुलो नीलमृत्तिका।
पीतश्वेता ततो भेकसदृशोऽश्मा प्रदृश्यते।।

अन्य कथन

यद्यहिनिलयो दृश्यो दक्षिणतः संस्थितः करंजस्य।
हस्तद्वये तु याम्ये पुरुषत्रितये शिरा सार्धे।।
कच्छपकः पुरुषाद्र्धे प्रथम चोद्यते शिरा पूर्वा।
उदगन्या स्वादुजला हरितोऽश्माधस्ततस्तोयम्।।

यदि करंजक वृक्ष के दक्षिण दिशा में वल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण तीन पुरुष नीचे शिरा होती है। यहाँ पर आधा पुरुष नीचे कछुआ, उसके नीचे पूर्ववाहिनी शिरा, उसके नीचे उत्तरवाहिनी शिरा, उसके नीचे हरे रंग का पत्थर और उसके नीचे जल निकलता है।

अन्य कथन

उत्तरतश्च मधूकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम्।
परिहृत्य पंच हस्तानर्धाष्टमपौरुषान् प्रथमम्।।
अहिराजः पुरुषेऽस्मिन् धूम्रा धात्री कुलुत्थवर्णोऽश्मा।
माहेन्द्री भवति शिरा वहति सफेनं सदा तोयम्।।

महुए के वृक्ष से उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्ष से पाँच हाथ आगे पश्चिम दिशा में साढ़े आठ पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे प्रधान सर्प, उसके नीचे धूम्र वर्ण की पृथ्वी, उसके नीचे कुल्थी के रंग का पत्थर और उसके नीचे सदा फेनयुत जल देने वाली पूर्ववाहिनी शिरा निकलती है।

अन्य कथन

वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन तिलकस्य सकुशदूर्वश्चेत्।
पुरुषैः पंचभिरम्भो दिशि वारुण्यां शिरा पूर्वा।।

तिलक (तालमखाना) के वृक्ष से दक्षिण कुशा और दूब से युक्त स्निग्ध वल्मीक हो तो उस वृक्ष से पाँच हाथ पश्चिम में पाँच पुरुष नीचे जल और पूर्ववाहिनी शिरा होती है।

तिलकाद् दक्षिणे स्निग्धः कुशदूर्वासमायुतः।
वल्मीकाच्चोत्तरे पंचहस्तान् सन्त्यज्य पश्चिमे।।
नरैः पंचभिरम्भोऽधः शिरा पूर्वात्र विद्यते।।

अन्य कथन

सर्पावासः पश्चाद्यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम्।
परतो हस्तत्रितयात् षड्भिः पुरुषैस्तुरीयोनैः।।
कौबेरी चात्र शिरा वहति जलं लोहगन्धि चाक्षोभ्यम्।
कनकनिभो मण्डूको नरमात्रे मृत्तिका पीता।।

कदम्ब वृक्ष से पश्चिम में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से तीन हाथ दक्षिण में पौने छः पुरुष नीचे जल होता है। वहाँ लोहे के गन्ध से युक्त अधिक जल वाली उत्तरवाहिनी शिरा निकलती है। एक पुरुष नीचे सुवर्ण के रंग का मेढ़क और उसके नीचे पीली मिट्टी निकलती है।

अन्य कथन

वल्मीकसंवृतो यदि तालो वा भवति नालिकेरो वा।
पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या।।

यदि वाल्मीक से युक्त ताड़ (ताल) या नारियल का वृक्ष हो तो उस वृक्ष में छः हाथ पश्चिम दिशा में चार पुरुष नीचे दक्षिणवाहिनी शिरा होती है।

अन्य कथन

याम्येन कपित्थस्याहिसंश्रयश्चेदुदग्जलं वाच्यम्।
सप्त परित्यज्य करान् खात्वा पुरुषान् जलं पंच।।
कर्बुरकोऽहिः पुरुषे कृष्णा मृत् पुटभिदपि च पाषाणः।
श्वेता मृत् पश्चिमतः शिरा ततश्चोत्तरा भवति।।

कपित्थ (कैथ) के वृक्ष से दक्षिण में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से सात हाथ उत्तर दिशा में पाँच पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुषतुल्य नीचे चितकबग सर्प और काली मिट्टी होती है। उसके नीचे परतदार पत्थर, उसके नीचे सफेद मिट्टी तथा एक पश्चिमवाहिनी शिरा और उसके नीचे उत्तरवाहिनी शिरा होती है।

अन्य कथन

अश्मन्तकस्य वामे बदरी वा दृश्यतेऽहिनिलयो वा।
षड्भिरुदक् तस्य करैः सार्धे पुरुषत्रये तोयम्।।
कूर्मः प्रथमे पुरुषे पाषाणो धूसरः ससिकता मृत्।
आदौ च शिरा याम्या पूर्वोत्तरतो द्वितीया च।।

अश्मन्तक वृक्ष के बाँयीं तरफ बेर का वृक्ष या वल्मीक हो तो उस वृक्ष से छः हाथ आगे उत्तर दिशा में साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे कछुआ, उसके नीचे धूसर वर्ण का पत्थर, उसके नीचे रेतीली मिट्टी, उसके नीचे दक्षिण शिरा और उसके नीचे ईशान कोण की शिरा निकलती है।

अन्य कथन

वामेन हरिद्रतरोर्वल्मीकश्चेज्जलं भवति पूर्वे।
हस्तत्रितये सत्र्यंशैः पुम्भिः पंचभिर्भवति।।
नीलो भुजगः पुरुषे मृत् पीता मरकतोपमश्चाश्मा।
कृष्णा भूः प्रथमं वारुणी शिरा दक्षिणेनान्या।।

हरिद्र (हरदुआ) वृक्ष की बाँयीं तरफ वल्मीक हो तो उस वृक्ष से तीन हाथ पूर्व दिशा में एक तिहाई युत पाँच पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे नील वर्ण का सर्प, उसके नीचे पीली

मिट्टी, उसके नीचे हरे रंग का पत्थर, उसके नीचे काली भूमि एवं उसके नीचे पश्चिमशिरा और दक्षिणशिरा निकलती है।

अन्य कथन

जलपरिहीने देशे दृश्यन्तेऽनूपजानि चेन्निमित्तानि।
वीरणदूर्वा मृदवश्च यत्र तस्मिन् जलं पुरुषे।।
भांर्गी त्रिवृता दन्ती सूकरपादी च लक्ष्मणा चैव।
नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु याम्बे त्रिभिः पुरुषैः।।

जिस जलरहित देश में बहुत जल वाले देश के चिन्ह दिखाई दें तथा जहाँ पर वीरण (गाँडर) और दूब अधिक कोमल हों, वहाँ एक पुरुष नीचे जल होता है तथा जहाँ पर भंगरैया, निसोत, इन्द्रदन्ती (दन्तिया = जयपाल), सूकरपादी, लक्ष्मणा-ये औषधियाँ हों, वहाँ से दो हाथ आगे दक्षिण दिशा में तीन पुरुष नीचे जल की प्राप्ति होती है।

अन्य कथन

स्निग्धाः प्रलम्बशाखा वामनविकटद्रुमाः समीपजलाः।
सुषिरा जर्जरपत्रा रूक्षाश्च जलेन सन्त्यक्ताः।।

जहाँ निर्मल लम्बी डालियों से युत छोटे-छोटे विस्तृत वृक्ष हों, वहाँ जल निकट में होता है और जहाँ अन्तःसार वाले, विवर्ण पत्ते वाले, रूखे वृक्ष हों, वहाँ जलाभाव होता है।

अन्य कथन

तिलकाम्रातकवरुणकभल्लातकविल्वतिन्दुकांकोलाः।
पिण्डारशिरीषांजनपरुषका वंजुलोऽतिबला।।
एते यदि सुस्निग्धा वल्मीकैः परिवृतास्ततस्तोयम्।
हस्तैस्त्रिभिरुत्तरतश्चतुर्भिरर्धेन च नरेण।।

जहाँ पर निर्मल वल्मीक से युत तिलक, आम्रातक (अम्बाड़ा), वरुणक (वरण), भिलावा, बेल, तेन्दु (तेन्दुआ), अंकोल, पिण्डार, शिरीष, अंजन, परूषक (फालसा), अशोक, अतिवला-ये वृक्ष हों, वहाँ इन वृक्षों से तीन हाथ आगे उत्तर दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे जल होता है।

अन्य कथन

अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं चास्मिन्।।

तृणरहित प्रदेश में कोई एक स्थान तृणयुत दिखाई दे अथवा तृणयुत प्रदेश में कोई एक स्थान तृणरहित दिखाई दे तो उस स्थान पर साढ़े चार पुरुष नीचे शिरा अथवा धन होता है।

अन्य कथन

कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेऽम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात्।
खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात्।।

जहाँ काँटे वाले वृक्षों में एक बिना काँटे वाला अथवा बिना काँटे वाले वृक्षों में एक काँटे वाला वृक्ष हो, वहाँ उस वृक्ष से तीन हाथ आगे पश्चिम दिशा में एक तिहाई युत तीन पुरुष नीचे जल या धन होता है।

अन्य कथन

नदति मही गम्भीरं यस्मश्चरणाहता जलं तस्मिन्।
सार्धैस्त्रिभिर्मनुष्यैः कौबेरी तत्र च शिरा स्यात्।।

जहाँ पाँव से ताड़न करने पर गम्भीर शब्द हो, वहाँ तीन पुरुष नीले जल और उत्तर शिरा होती है।

अन्य कथन

वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा स्यात्।
विज्ञातव्यं शाखातले जलं त्रिपुरुषं खात्वा।।

वृक्ष की एक शाखा नीचे की ओर झुकी हो या पीली पड़ गई हो तो उस शाखा के नीचे तीन पुरुषसमान खोदने पर जल मिलता है।

अन्य कथन

फलकुसुमविकारो यस्य तस्य पूर्वे शिरा त्रिभिर्हस्तैः।
भवति पुरुषैश्चतुर्भिः पाषाणोऽधः क्षितिः पीता।।

जिस वृक्ष के फल-पुष्पों में विकार उत्पन्न हो, उस वृक्ष से तीन हाथ पर पूर्व दिशा में चार पुरुष नीचे शिरा होती है तथा नीचे पत्थर और पीली भूमि मिलती है।

अन्य कथन

यदि कण्टकारिका कण्टकैर्विना दृश्यते सितैः कुसुमैः।
तस्यास्तलेऽम्बु वाच्यं त्रिभिर्नरैरर्धपुरुषे च।।

जहाँ काँटों से रहित और सफेद पुष्पों से युत कटेरी का वृक्ष दिखाई दे, उस वृक्ष के नीचे साढ़े तीन पुरुष खोदने पर जल निकलता है।

अन्य कथन

खर्जूरी द्विशिरस्का यत्र भवेज्जलविवर्जिते देशे।
तस्याः पश्चिमभागे निर्देश्यं त्रिपुरुषैर्वारि।।

जिस जलरहित देश में दो शिर वाले खजूर का पेड़ हो, वहाँ उस वृक्ष से दो हाथ पश्चिम दिशा में तीन पुरुष नीचे जल कहना चाहिये।

खर्जूरी द्विशिरस्का स्यान्निर्जले चेत् करद्वये।
निर्देश्यं पश्चिमे वारि खात्वाऽधः पुरुषत्रयम्।।

अन्य कथन

यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्वात्पलाश..... वा।
सव्येन तत्र हस्तक्ष्येऽम्बु पुरुषद्वये भवति।।

यदि सफेद पुष्प वाला कर्णिकार (कठचम्पा) या ढाक का वृक्ष हो तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण दिशा में दो पुरुष नीचे जल होता है।

अन्य कथन

यस्यामूष्मा धात्र्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुगले।
निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण।।

जिस स्थान से भाप या धूँआ निकलता हुआ दिखाई दे, वहाँ दो पुरुष नीचे बहुत जल बहने वाली शिरा कहनी चाहिये।

अन्य कथन

यस्मिन् क्षेत्रोद्देशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति।
स्निग्धमतिपाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे तत्र।।

जिस खेत में धान्य उत्पन्न होकर नष्ट हो जाय, बहुत निर्मल धान्य हो या उत्पन्न होकर पीला पड़ जाय, वहाँ दो पुरुष नीचे बहुत जल बहने वाली शिरा होती है।

मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि।
ग्रीवा करभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति।।

अब मरु देश में जिस प्रकार की शिरा होती है, उसको कहते हैं। जैसे- ऊँट की गर्दन की तरह भूमि में ऊँची-नीची शिरा होती है।

तत्राह-

पूर्वोत्तरेण पीलोर्यदि वल्मीको जलं भवति पश्चात्।
उत्तरगमना च शिरा विज्ञेया पंचभिः पुरुषैः।।
चिन्हं दर्दुर आदौ मृत् कपिला तत्परं भवेद्धरिता।
भवति च पुरुषेऽधोऽश्मा तस्य तलेऽम्भो विनिर्देश्यम्।।

यदि पीलु (पिलुआ = 'पीलौ गुडफलः स्रंसी' त्यमरः) वृक्ष के ईशान कोण में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ पश्चिम दिशा में पाँच पुरुष नीचे उत्तर बहने वाली शिरा होती है। यहाँ खोदने के समय एक पुरुष नीचे मेढ़क, उसके नीचे पीली तथा हरी मिट्टी, उसके नीचे पत्थर और उसके नीचे जल कहना चाहिये।

ऐशान्यां पीलुवृक्षस्य वल्मीकश्चेज्जलं वदेत्।
चतुर्भिः सरलैर्हस्तैः पश्चिमे नरपंचमे।।
प्रथमे पुरुषे भेकः कपिला हरिता च मृत्।
पाषाणस्य तले सौम्यां शिरां बहुजलां वदेत्।।

अन्य कथन

पीलोरेव प्राच्यां वल्मीकोऽतोऽर्धपंचमैर्हस्तैः।
दिशि याम्यायां तोयं वक्तव्यं सप्तभिः पुरुषैः।।
प्रथमे पुरुषे भुजगः सितासितो हस्तमात्रमूत्रिश्च।
दक्षिणतो वहति शिरा सक्षारं भरि पानीयम्।।

पीलु वृक्ष की पूर्व दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ दक्षिण दिशा में सात पुरुषप्रमाण नीचे जल कहना चाहिये। यहाँ खोदने पर एक पुरुषप्रमाण नीचे एक हाथ लम्बा चितकबरा सर्प और उसके नीचे बहुत खारा जल बहने वाली दक्षिण शिरा निकलती है।

अन्य कथन

उत्तरतश्च करीरस्याहिगृहं दक्षिणे जलं स्वादु।
दशभिः पुरुषैर्ज्ञेयं पुरुषे पीतोऽत्र मण्डूकः।।

करीर (करील) वृक्ष के उत्तर दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ पर दक्षिण दिशा में दस पुरुष नीचे मधुर जल जानना चाहिये। यहाँ पर एक पुरुष नीले पीला मेढ़क दिखाई देता है।

उदक्करीराद्वल्मीको दृश्यते चेज्जलं वदेत्।
चतुर्भिर्दक्षिणैर्हस्तैः सार्धैर्दशनरादतः।।

नरे भेकः पीतवर्णो दृश्यते चिन्हमत्र हि।।

अन्य कथन

रोहीतकस्य पश्चादहिवासश्चेत्त्रिभिः करैर्याम्ये।

द्वादश पुरुषान् खात्वा सक्षारा पश्चिमेन शिरा।।

रोहीतक (लाल करंज) वृक्ष के पश्चिम में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से तीन हाथ आगे दक्षिण दिशा में बारह पुरुषप्रमाण नीचे खारे जल वाली पश्चिमवाहिनी शिरा निकलती है।

अन्य कथन

इन्द्रतरोर्वल्मीकः प्राग्दृश्यः पश्चिमे शिरा हस्ते।

खात्वा चतुर्दश नरान् कपिला गोधा नरे प्रथमे।।

यदि अर्जुन वृक्ष के पूर्व में वल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्ष से एक हाथ पर पश्चिम दिशा में चौदह पुरुषप्रमाण नीचे शिरा निकलती है और एक पुरुषप्रमाण नीचे पीला गोह दिखाई देता है।

यदि वा सुवर्णनाम्नस्तरोर्भवेद्वामतो भुजंगगृहम्।

हस्तद्वये तु याम्ये पंचदशनरावसानेऽम्बु।।

क्षारं पयोऽत्र नकुलोऽर्धमानवे ताम्रसन्निभश्चाश्मा।

रक्ता च भवति वसुधा वहति शिरा दक्षिणा तत्र।।

धत्तूर वृक्ष के उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण पन्द्रह पुरुष नीचे जल होता है। इस खात में खारा जल होता है तथा आधा पुरुष नीचे नेवला, ताम्रवर्ण का पत्थर और लाल रंग की मिट्टी निकलती है। यहाँ दक्षिण शिरा बहती है।

बदरीरोहितवृक्षौ सम्पृक्तौ चेद्विनापि वल्मीकम्।

हस्तत्रयेऽम्बु पश्चात् षोडशभिर्मानवैर्भवति।।

सुरसं जलमादौ दक्षिणा शिरा वहति चोत्तरेणान्या।

पिष्टनिभः पाषाणो मृत् श्वेता वृश्चिकोऽर्धनरे।।

वल्मीक विना भी बेर एवं लाल करंज-ये दोनों वृक्ष इकट्ठे दिखाई दें तो उन वृक्षों से तीन हाथ आगे पश्चिम दिशा में सोलह पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है। यहाँ पर मधुर जल होता है। पहले दक्षिण शिरा और बाद में उत्तर शिरा बहती है, आटे के समान सफेद पत्थर तथा सफेद मिट्टी निकलती है और आधा पुरुषप्रमाण नीचे बिच्छू दिखाई देता है।

अन्यदप्याह-

सकरीरा चेद्वदरी त्रिभिः करैः पश्चिमेन तत्राम्भः।

अष्टादशभिः पुरुषैरैशानी बहुजला च शिरा।।

करीर वृक्ष के साथ बेर का वृक्ष दिखाई दे तो उन वृक्षों से तीन हाथ आगे पश्चिम दिशा में अठारह पुरुषप्रमाण नीचे ईशान कोण में बहने वाली और बहुत जल वाली शिरा होती है।

अन्य कथन

पीलुसमेता बदरी हस्तत्रयसम्मिते दिशि प्राच्याम्।
विंशत्या पुरुषाणामशोष्यमम्भोऽत्र सक्षारम्।।

यदि पीलु वृक्ष से युत बेर का वृक्ष हो तो उनसे तीन हाथ आगे पूर्व दिशा में बीस पुरुषप्रमाण नीचे कभी न सूखने वाला खारा जल होता है।

अन्य कथन -

ककुभकरीरावेकत्र संयुतौ यत्र ककुभविल्वौ वा।
हस्तद्वयेऽम्बु पश्चान्नरैर्भवेत् पंचविंशत्या।।

जिस जगह अर्जुन और करीर या अर्जुन और बेल के वृक्ष का संयोग हो तो उन वृक्षों से दो हाथ पर पश्चिम दिशा में पच्चीस पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है।

अन्य कथन -

वल्मीकमूर्धनि यदा दूर्वा च कुशाश्च पाण्डुराः सन्ति।
कूपो मध्ये देयो जलमत्र नरैकविंशत्या।।

यदि वल्मीक के ऊपर दूब या सफेद कुशा हो तो वल्मीक के नीचे कूप खोदने से इक्कीस पुरुषप्रमाण नीचे जल मिलता है।

अन्य कथन

स्निग्धतरूणां याम्ये नरैश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च।
तरुगहनेऽपि हि विकृतो यस्तस्मात् तद्वदेव वदेत्।।

जहाँ स्निग्ध वृक्ष हों, वहाँ उन वृक्षों से चार पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है तथा जहाँ बहुत वृक्षों के मध्य में एक वृक्ष विकारयुत दिखाई दे तो वहाँ उस विकारयुत वृक्ष से दक्षिण चार पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है।

अन्य कथन

नमते यत्र धरित्री सार्धे पुरुषेऽम्बु जांगलानूपे।
कीटा वा यत्र विनालयेन बहवोऽम्बु तत्रापि।।

जिस बहुत जल वाले या स्वल्प जल वाले देश में पाँव रखने से धरती दब जाय और जहाँ बिना रहने के स्थान के बहुत से कीड़े हों, वहाँ डेढ़ पुरुषप्रमाण नीचे जल कहना चाहिये।

उष्णा शीता च मही शीतोष्णाम्भस्त्रिभिर्नरैः सार्धैः।
इन्द्रधनुर्मत्स्यो वा वल्मीको वा चतुर्हस्तात्।।

जहाँ सब जगह गरम और एक जगह ठण्डी या सब जगह ठण्डी और एक जगह गरम भूमि हो, वहाँ साढ़े तीन पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है। जिस स्वल्प जल वाले या अधिक जल वाले प्रदेश में इन्द्रधनुष, मछली या वल्मीक हो, उस भूमि में चार हाथ नीचे जल होता है।।

अन्य कथन

वल्मीकानां षड्क्त्यां यद्येकोऽभ्युच्छ्रितः शिरा तदधः।
शुष्यति न रोहते वा सस्यं यस्यां च तत्राम्भः।।

जहाँ बहुत वल्मीकों में एक वल्मीक सबसे ऊँचा हो, वहाँ उस ऊँचे वल्मीक के नीचे चार पुरुषप्रमाण खोदने पर जल मिलता है अथवा जिस खेत में धान्य जम कर सूख जाय या जमे ही नहीं, वहाँ चार पुरुषप्रमाण नीचे जल कहना चाहिये।।

वल्मीकपंक्त्यां यद्येकोऽभ्युच्छ्रितस्तदधो जलम्।
न रोहते शुष्यते वा यत्र सस्यं चतुष्करात्।।
जलं तत्रैव निर्देश्यं भूमौ निःसंशयं तदा।।

अन्य कथन

न्यग्रोधपलाशोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः।
वटपिप्पलसमवाये तद्वद्वाच्यं शिरा चोदक्।।

जहाँ बड़, पीपल, गूलर-ये तीनों वृक्ष इकट्ठे हों तथा जहाँ बड़, पीपल-ये दोनों वृक्ष एक साथ अवस्थित हों, वहाँ इन वृक्षों के नीचे तीन हाथ खोदने पर जल और उत्तर शिरा मिलती है।।

पलाशोदुम्बरौ यत्र स्यातां न्यग्रोधसंयुतौ।
वटपिप्पलकौ वाऽथ समेतौ तदधो जलम्।।
करैस्त्रिभिरुदक् चाम्भः शिरां शुभजलां वदेत्।।

कूपलक्षण-

आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवेत् कूपः।
नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः।।

नैर्ऋतकोणे बालक्षयं च वनिताभयं च वायव्ये।
दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषासु शुभावहाः कूपाः।।

यदि गाँव या नगर के आग्नेय कोण में कूप हो तो उस गाँव या नगर में निम्न अनेक प्रकार का भय होता है। अधिकतर आग लगती है और मनुष्य भी जल कर मरते हैं। नैर्ऋत्य कोण में कूप हो तो बालकों का क्षय और वायव्य कोण में हो तो स्त्रियों को भय होता है। शेष पाँच दिशाओं में कूप का होना शुभ होता है।

एतद्यदुक्तं दकार्गलं तत्सारस्वतं दृष्टेदानीं मानवं वक्ष्यामीत्याह-

सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत्कृतं तदवलोक्य।
आर्याभिः कृतमेतद् वृत्तैरपि मानवं वक्ष्ये।।

सारस्वत मुनि द्वारा जो उदकार्गल कहे गये हैं, उनको देखकर मैंने आर्या छन्दों के द्वारा यह उदकार्गल कहा है। अब मनु द्वारा प्रतिपादित उदकार्गल को वृत्तों के द्वारा कहता हूँ।

अन्य कथन

स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्ल्यो
निश्छिद्रपत्राश्च ततः शिरास्ति।
पद्यक्षुरोशीरकुलाः सगुण्ड्राः
काशाः कुशा वा नलिका नलो वा।
खर्जूरजम्ब्वर्जुनवेतसाः स्युः
क्षीरान्विता वा द्रुमगुल्मवल्ल्यः।
छत्रेभनागाः शतपत्रनीपाः
स्युर्नक्तमालाश्च ससिन्दुवाराः।।
विभीतको वा मदयन्तिका वा
यत्रास्ति तस्मिन् पुरुषत्रयेऽम्भः।
स्यात् पर्वतस्योपरि पर्वतोऽन्य-
स्तत्रापि मूले पुरुषत्रयेऽम्भः।।

जहाँ पर स्निग्ध, छिद्ररहित पत्तों से युत वृक्ष, गुल्म या लता हो; वहाँ तीन पुरुषप्रमाण नीचं जल होता है। अथवा स्थलकमल, गोखरू, उशीर (खस), कुल-ये द्रव्यविशेष; गुण्ड्र (सरकण्डा, शर), काश, कुशा, नलिका, नल-ये तृणविशेष; खजूर, जामुन, अर्जुन, वेंत-ये वृक्षविशेष; दूध वाले

वृक्ष, गुल्म और लता, छत्री, हस्तीकर्णी, नागकेशर, कमल, कदम्ब, करंज-ये सभी सिन्दुवार वृक्ष के साथ; बहेड़ा वृक्षविशेष, मदयन्तिका द्रव्यविशेष-ये सब जहाँ पर अवस्थित हों; वहाँ पर तीन पुरुष-प्रमाण नीचे जल होता है। साथ ही जहाँ पर एक पर्वत के ऊपर दूसरा पर्वत हो, वहाँ पर भी तीन पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है।

गुल्मपादपवल्लयः स्यु पत्रैश्चाखण्डितैर्युताः।
तदधो विद्यते वारि खाते तु पुरुषत्रये।।
पद्यक्षुरोशीरकुला गुण्ड्रा काशः कुशोऽथवा।
नलिकानलखर्जूरजम्बूवेतसकार्जुनाः।।
यत्र स्युर्दुरमवल्ल्यश्च क्षीरयुक्ताः फलान्विताः।
छत्रेभनागनीपाश्च शतपत्रविभीतकाः।।
सिन्दुवारा नक्तमालाः सुगन्धा मदयन्तिकाः।
यत्रैते स्युस्तत्र जलं खातेऽम्भः पुरुषत्रये।।
गिरेरुपरि यत्रान्यः पर्वतः स्यात्ततो जलम्।
तस्यैव मूले पुरुषैस्त्रिभिर्वाऽधो विनिर्दिशेत्।।

अन्य कथन

नैम्बं पत्रं त्वक्च नालं तिलानां
सापामार्गं तिन्दुकं स्याद् गुडूची।
गोमूत्रेण स्त्रावितः क्षर एषां
षट्कृत्वोऽतस्तापितो भिद्यतेऽश्मा।।

नीम के पत्ते, नीम की छाल, तिलों का नाल, अपामार्ग, तेन्दू का फल, गिलोय-इन सबों के भस्म को गोमूत्र में मिलाकर उसे तपाई हुई शिरा पर छः बार छिड़कने से शिला फूट जाती है।
अधुना शस्त्रपानमाह-

आर्कं पयो हुडुविषाणमषीसमेतं
पारावताखुशकृता च युतः प्रलेपः।
टंकस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं
पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः।।

शस्त्र पर पहले तिल का तेल मले, फिर मेष के सींग का भस्म तथा कबूतर और चूहे की बीट से युत आक के वृक्ष के दूध का लेप करे, फिर उसको आग में तपा कर पूर्वोक्त पान देवे। ऐसा करने के पश्चात् तेज करके पत्थर पर प्रहार करने से भी उसकी धार नहीं टूटती है।

टंक शस्त्रम्। एष श्लोकः खड्गलक्षणे व्याख्यातः।।

अन्य कथन

क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते
दिनोषिते पायितमायसं यत्।
सम्यक् शितं चाश्मनि नैति भंग
न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम्।।

एक अहोरात्र तक तक्र से युत कदली वृक्ष की भस्म में स्थापित लोहे में पूर्वोक्त पान देकर तीक्ष्ण करके पत्थर पर प्रहार करने से भी उस शस्त्र की धार नहीं टूटती है तथा अन्य लोहे पर प्रहार करने से भी वह शस्त्र कुण्ठता (अतीक्ष्णता) को नहीं प्राप्त होता है।

वापीलक्षणमाह-

पाली प्रागपरायताम्बु सुचिरं धत्ते न याम्योत्तरा
कल्लोलैरवदारमेति मरुता सा प्रायशः प्रेरितैः।
तां चेदिच्छति सारदारुभिरपां सम्पातमावारयेत्
पाषाणादिभिरेव वा प्रतिचयं क्षुण्णं द्विपाश्वादिभिः।।

पूर्वोपरायत वापी में अधिक समय तक जल ठहरता है। दक्षिणोत्तरायत वापी में जल नहीं ठहरता है; क्योंकि वायु के तरंगों से वह वापी नष्ट हो जाती है। यदि दक्षिणोत्तरायत वापी बनाना चाहे तो तरंगों से बचाने के लिये उसके किनारों को मजबूत लकड़ी या पत्थर आदि से चुनवा दे तथा बनाने के समय मिट्टी की हरेक तह को हाथी-घोड़े आदि को उस पर दौड़ाकर बैठाता जाय, जिससे कि मिट्टी दबकर विशेष मजबूत हो जाय।

कीदृशं वाप्यास्तीरं कारयेदित्याह-

ककुभवटाम्रप्लक्षकदम्बैः सनिचुलजम्बूवेतसनीपैः।
कुरबकतालाशोकमधूकैर्बकुलविमिश्रैश्चावृततीराम्।।

निचुल, जामुन, वेंत, नीप (एक तरह का कदम्ब) - इन वृक्षों के साथ अर्जुन, बड़, आम, पिलखन,

कदम्ब और बकुल के साथ कुरवक, ताड़, अशोक, महुआ, मौलसिरी- इन वृक्षों को वापी के तट पर लगाना चाहिये।

अथ नैर्वाहिकद्वारलक्षणमाह-

द्वारं च नैर्वाहिकमेकदेशे कार्यं शिलासंजतवारिमार्गम्।
कोशस्थितं निर्विवरं कपाटं कृत्वा ततः पांशुभिरावपेत्तम्।

वापी की एक तरफ जल निकलने के लिये पत्थरों से बन्धवाया हुआ एक मार्ग बनाना चाहिये। उस मार्ग को छिद्ररहित लकड़ी के तख्ते से ढककर मिट्टी से दृढ़ कर देना चाहिये।

अधुना द्रव्ययोगमाह-

अंजनमुस्तोशीरैः सराजकोशातकामलकचूर्णैः।
कतकफलसमायुक्तैर्योगः कूपे प्रदातव्यः।।

अंजन, मोथा, खस, राजकोशातक, आँवला, कतक का फल-इन सबका चूर्ण कूप में डालना चाहिये।।121।।

अस्य गुणानाह-

कलंषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं यदि वा शुभगन्धि भवेत्।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धि गुणैरपरैश्च युतम्।।

जो जल गन्दला, कडुआ, खारा, बेस्वादर या दुर्गन्ध वाला हो, वह इन पूर्वोक्त औषधियों के डालने पर निर्मल, मधुर, सुन्दर गन्ध वाला और अनेक गुणों से युक्त हो जाता है।

अधुना नक्षत्राण्याह-

हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः।
शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः।।

हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, शतभिषा-इन नक्षत्रों में कूप का आरम्भ करना शुभ होता है।

अधुना प्रतिष्ठाविधानमाह-

कृत्वा वरुणस्य बलिं वटवेतसकीलकं शिरास्थाने
कुसुमैर्गन्धैर्धूपैः सम्पूज्य निधापयेत् प्रथमम्।।

वरुण को बलि देकर गन्ध, पुष्प, धूप आदि से बड़ या वेतस की लकड़ी की कील की पूजन करके पहले शिरास्थान में उसको स्थापित करना चाहिये।

मेघोवं प्रथममेव मया प्रदिष्टं
ज्येष्ठामतीत्य बलदेवमतादि दृष्ट्वा।
भौमं दकार्गलमिदं कथितं द्वितीयं
सम्यग्वराहमिहिरेण मुनिप्रसादात्।।

ज्येष्ठ की पूर्णिमा के बाद में जिस प्रकार जल का ज्ञान होता है, उसको मैंने पहले ही कह दिया है। यहाँ बलदेव आदि आचार्यों का मत देखकर मुनियों की कृपा से मैंने जलज्ञान के लिये यह दूसरा 'दकार्गल' नामक अध्याय कहा है।

बोध प्रश्न -

1. दकार्गल का शाब्दिक अर्थ है -
   क. जल ख. भूमिगत जल ग. पानी घ. नीर
2. पूर्वदिशा के स्वामी का क्या नाम है।
   क. इन्द्र ख. राहु ग. गुरु घ. यम
3. जल शिराओं का नाम किसके नाम पर पड़ा है।
   क. दिक्पतियों ख. कालपति ग. देशपति घ. कोई नहीं
4. नवमी शिरा का नाम क्या है।
   क. लक्ष्मी ख. महाशिरा ग. श्वेत घ. देव
5. पुरुष प्रमाण का मान कितना है।
   क. १२० अंगुल ख. १२ अंगुल ग. १० घ. १४ अंगुल
6. जलरहित देश में गूलर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में ढाई पुरुष नीचे कैसी जल वाली शिरा होती है।
   क. सुन्दर ख. अस्वादु ग. लवणजल घ. कोई नहीं

५.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत दकार्गल अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं चराचर जगत् से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान है। दकार्गल का सामान्य अर्थ है – भूमिगत जल। यद्यपि यह एक परीक्षण जन्य ज्ञान है कि भूमि पर कहाँ, कितना और कैसा जल मिलेगा? यह परीक्षण ज्योतिष शास्त्र में कथित दकार्गल ज्ञान से प्राप्त

करना सम्भव है। आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ वृहत्संहिता में दकार्गल के लिए एक स्वतन्त्र अध्याय का ही प्रतिपादन किया है। आचार्य वराहमिहिर ने सर्वप्रथम दकार्गल का प्रयोजन बताते हुए कहा है कि -जिसका ज्ञान होने पर भूमिगत ज्ञान प्राप्त होता है, उस धर्म और यश को देने वाले 'दकार्गल' को कहते हैं। मनुष्यों के अंग में नाड़ियाँ होती हैं, उसी तरह भूमि में भी ऊँची-नीची शिरा आकाश से केवल एक स्वाद वाला जल पृथ्वी पर गिरता है; किन्तु वही जल विशेषता से तत्तत् स्थानों में अनेक प्रकार के रस और स्वाद वाला हो, जल की तरह भूमि के वर्ण और रस के समान ही जल के भी रस और वर्ण सिद्ध होती है। भूमि, वर्ण और रस का परीक्षण-पूर्वक जल के रस और स्वाद का परीक्षाण् चाहिये। भूमिगत जल ज्ञान के लिए हमें शिराओं का ज्ञान होना परमावश्यक है। अत: पहले शिराओं का समझते हैं। पूर्व आदि आठ दिशाओं के क्रम से इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, चन्द्र और शिव स्वामी होते हैं। इन आठ दिक्पतियों के नाम से आठ (ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या इत्यादि) ही शिरायें भी प्रसिद्ध हैं। इन आठ शिराओं के मध्य में महाशिरा नाम वाली नवमी शिरा है। इन नव शिराओं के अतिरिक्त अन्य भी सैकड़ों शिरायें निकली हैं, जो अपने-अपने नाम से प्रसिद्ध हैं। पाताल से ऊपर की तरफ जो शिरा निकली है, वह और पूर्व आदि चारों दिशाओं में स्थित शिरायें शुभ तथा अग्निकोण आदि विदिशाओं में स्थित शिरायें अशुभ होती हैं। अतः इसके बाद शिराओं के लक्षण कहते हैं।

यदि जलरहित देश में वेदमजनूँ का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में डेढ़ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। भुजा ऊपर की तरफ खड़ी करने से पुरुष की जितनी लम्बाई हो, वह एक पुरुषप्रमाण (120 अंगुल) यहाँ पर ग्रहण कर इस खात में पश्चिमा शिरा बहती है। यहाँ पर खोदने के समय कुछ चिन्ह जैसे-आधा पुरुषप्रमाणतुल्य खोदने पर पाण्डु वर्ण का मेढ़क, उसके नीचे पत्थर और पत्थर के नीचे जल मिलता है।

५.६ पारिभाषिक शब्दावली

दकार्गल – भूमिगत जल की स्थिति
पुरुष प्रमाण - १२० अंगुल
भूमिगत – पृथ्वी के नीचे
पूर्व – पूर्व दिशा
दिक्पति – दिशाओं के स्वामी

विदिशा – चार कोण को विदिशा के रूप में जानते है।

मृदु जल - मीठे स्वाद वाला जल

स्वादु जल – पीने योग्य जल

५.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. क
4. ख
5. क
6. क

५.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीका – अच्युतानन्द झा
2. नारदसंहिता – टीका – पं. रामजन्म मिश्र
3. अद्भुतसागर – मूल लेखक – बल्लालसेन।
4. वशिष्ठ संहिता – मूल रचयिता – महात्मा वशिष्ठ, टीकाकार – प्रोफेसर गिरिजाशंकर शास्त्री

५.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. वृहत्संहिता
3. भृगु संहिता
4. प्रश्नमार्ग

५.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. दकार्गल से आप क्या समझते है।
2. वराहमिहिर कथित शिरा ज्ञान का उल्लेख कीजिये।
3. वृहत्संहिता के अनुसार दकार्गल का वर्णन कीजिये।
4. दकार्गल का महत्व प्रतिपादन कीजिये।